पाषाण-कन्या

कंचनकुमार

प्रथम संस्करण
अप्रैल १९५८

प्रकाशक
चौधरी एण्ड संस
वाराणसी

मुद्रक—बैजनाथ प्रसाद
कल्पना प्रेस
रामकटोरा रोड, वाराणसी

आवरण सज्जा
कांजिलाल

मूल्य
एक रुपया पचास नये पैसे

भाई मोहनलाल गुप्त

और

ज्वालाप्रसाद 'केशर' को—

होटल के पास ही बस स्टैण्ड था।

मेरे पास सामान बहुत थोड़ा सा था, फिर भी एक कुली कर लिया। होटल से बायीं ओर दो मिनट चलकर स्टैण्ड पर आ गया। कुली पैसा लेकर चला गया।

पोर्टर या कुली सब जगह ही आवेगहीन होते हैं। जाते-आते यात्रियों के दिलों में गुजरनेवाली बातों का ख्याल वे नहीं रखते। केवल वे सामान यहाँ से वहाँ करने में व्यस्त रहते हैं। माल पहुँचा कर लेते हैं मजदूरी और आधा लगाते हैं टीपस् के लिए। बस सम्पर्क खत्म! दाई, डोम और कुली ममता के बाहर हैं।

मोटर यूनियन की बसें कतार से खड़ी थीं। मैं काउन्टर के 'क्यू' में खड़ा हो गया। भीड़ काफी थी, टिकट मिलने में कुछ देर लगी। टिकट पर बस नम्बर लिखा था, ऋषीकेश जानेवाली उस बस पर जा बैठा।

'एक-दो-तीन-चार...'

बस का क्लीनर यात्रियों को गिनने लगा। हर बस में बयालीस यात्री जायँगे। साथ में डण्डा लिए यात्रियों को देख बेचारे का हिसाब बार-बार गड़बड़ा रहा था, 'एक–दो–तीन चार·····'

'ठीक है।' क्लीनरने हिसाब मिलाकर कहा।

बस छुटी।

हरिद्वार की पक्की सड़क से होते हुए—हर की पैड़ी को पीछे छोड़ कर, शहर से दूर, निर्जन-से रास्ते में आ गया। बस जब हरकी पैड़ी के पास थी तभी से लोगों ने 'गंगा मैया की जय' आदि नारे लगाना शुरु कर दिया था।

बस पैड़ी से काफी दूर आ जाने पर भी नारा बन्द नहीं हुआ।

झिर-झिर करती हुई हल्की बूँदें पड़ रही थीं।

लोग काफी थक चुके थे। नारा लगाने या बात करने का उत्साह किसी में नहीं था। सब चुपचाप अपनी-अपनी सीट पर बैठे थे। सिर्फ दो एक आपस में जाने क्या फुसफुसा रहे थे।

निर्जन सड़क के दोनों ओर हरीतिमा का साम्राज्य था। पेड़ों के पत्तों पर बूँदें शबनम-सी लग रही थीं। डाली पर बैठे हुए कौवे काँव-काँव भूलकर न जाने क्यों उदास हो गये।

चारों ओर अजीब सन्नाटा छाया हुआ था।

एक कोने में बैठा हुआ था, एक यात्री। उमर सत्तर के लगभग होगी। सारा शरीर थरथरा कर काँप रहा था, फटा-पुराना ओवरकोट की जेब से दवाकी दो शीशियाँ झाँक रही थीं। मफलर से ढँके चेहरे का थोड़ा सा अंश ही दीख रहा था। हाथों में दस्ताना पहने था।

'कहाँ जायँगे आप?' मैंने पूछा।

उनकी समझ में कुछ नहीं आया, प्रश्नात्मक भाव से मेरी ओर देखने लगे। शायद कुछ ऊँचा सुनते हों, इसलिए मैंने जोर से पूछा—'कहां जायँगे ?'

देर तक कुछ समझने की कोशिश की, फिर बोले, 'गोयिंग केदार–बद्री--'

'केदार बद्री ! इस उमर में !' मैं चीख-सा पड़ा।

'क्यों नहीं बेटा ?' पास बैठे हुए एक बूढ़े संन्यासी ने हँसते हुए कहा, 'बद्री विशाल की कृपा से सब सम्भव है। वे चाहें तो लँगड़ा हिमालय लाँघ जाय।'

'पोंगापन्थी में मेरा विश्वास कम है।'

'विश्वास समय से आता है, बेटा !'

'आप लोगों को समय तो लगेगा ही ! नहीं तो आपकी बातों की व्यर्थता जो प्रमाणित हो जायगी। भई, समय का चक्कर ही कुछ अजीब-सा है। क्यों, मैंने ठीक कहा न ?'

'चपलता तुम्हें शोभा नहीं देती, यात्री। मेरा कहना था कि उत्ताल प्रशांत के प्रशांति की तरह समय आने पर तुम्हारे उद्वेलित हृदय में प्रशांति छायेगी•••'

'समय ? वह कैसा ?'

'परिवर्तन के लिए जो सबसे जरूरी है, यानी अवस्था और परिस्थिति का ही दूसरा नाम।'

'जी मैं समझा नहीं।'

यही समझो, लोहे को फौलाद बनाने के लिए आग में रखना तथा एक निश्चित समय तक उसके लिए प्रतीक्षा करना•••' कह कर वे खिड़की

के पास चेहरा ले जाकर बाहरी दृश्य देखने में तल्लीन हो जाने का बहाना करने लगे, ताकि मैं उन्हें परेशान न करूँ।

हृषीकेश छोड़कर पहाड़ी पगडण्डी के सहारे बनी हुई सड़क से बस चल रही थी। एक बस चल सके इतना चौड़ा रास्ता था। नीचे, काफी नीचे बह रही है गङ्गा।

बसें एक के बाद एक कतार से चल रही थीं, यात्री ड्राइवर की कुशलता की तारीफ कर रहे थे। टेढ़ी-मेढ़ी घूमती हुई इस पगडण्डी में किसी तरह की असावधानी हुई कि सीधे स्वर्ग, सोचते ही नीचे खाई की ओर नजर पड़ने की डर से लोग काँप उठते।

काफी समय बीत गया। आस पास के असुन्दर नंगे पहाड़ भी सुन्दर लग रहे थे। चलते चलते बस चारों ओर से घिरे हुए पहाड़ों के दायरे में आ गयी। जिधर देखो पहाड़ ही पहाड़। लग रहा था जैसे किसी मायावी जादूगर के फन्दे में आ गये हों और अब इस भूल-भुलैया से निकलना मुश्किल है।

जिन्दगी और मौत का फासला कितना है, यह शायद ही किसी ने नापा होगा, पर इस खतरनाक पगडण्डी में दोनों की दूरी सिर्फ इंच भर सी लगती है।

जिन्दगी और मौत से टक्कर लेनेवाला बेचारा सिंदबाद! 'सीजर्स' सिगरेट के विज्ञापन की तरह बेचारे को पता भी नहीं चला कि उसने क्या खोया है!

अगर आज वह यहाँ होता तो 'सिंदबाद दी सेलर' का 'वैली आफ डायमण्ड' वाले चैप्टर का वर्णन और भी रोमांचकारी होता। मगर आज

न अरब का सौदागर है न 'बैली' की कहानी सुनने वाला ही। जमाना सिंदबादों का नहीं, बल्कि फिल्म स्टारों का है! जहाँ वैली आफ डायमण्ड' की कहानी नहीं चलती, वहाँ चलती है—ब्वाय मीट्स गर्ल स्टोरी!

तंग चक्करदार ऊँची-नीची पगडंडियों से चलने के कारण यात्रियों को चक्कर आ रहे थे। जहाज के 'सी सिक' की तरह इधर की बसों में चक्कर, उल्टी आदि करीब-करीब सबको सताया करती है।

उल्टी और चक्कर से मैं तंग आ गया था। जी चाहता था कि, यहीं उतर पड़ूं। लग रहा था मरणयंत्रणा की तरह इस यंत्रणा का भी शायद कोई अन्त नहीं है।

२

लंका में रावण बध हुआ, उस ब्रह्महत्या का प्रायश्चित करना अभी बाकी था। फिर शोकातुर दशरथ मौत के शिकार हुए, उनका तर्पण भी नहीं हो पाया। सो रामचन्द्र देवप्रयाग आये।

मगर मैं किस पाप का प्रायश्चित करने आया हूँ ? सोचते-सोचते कमरा बन्द कर जंगली को साथ लेकर धर्मशाला से निकल पड़ा। दूर तक जाने वाली एक सँकरी गली, उसके दोनों ओर कतार से लगी दुकानें थीं—जहाँ करीब-करीब सब कुछ मिलता था।

छोटा-सा एक ट्रेजरी, उसके पास ही पोस्ट आफिस का बोर्ड लगा हुआ है। मगर पोस्ट आफिस तक पहुँचने के लिए पहाड़ के ऊपर काफी दूर तक चढ़ना पड़ता है।

मैं आगे-आगे चल रहा था और लाठी लेकर पीछे-पीछे आ रहा था—जंगली। मेरे एक हाथ में टार्च था और दूसरे में लाठी।

हम पुल के पास आ गये।

झूलते हुए दो पुल अलकनन्दा को पार करते हुए तीन पहाड़ों के बीच सम्पर्क स्थापित करते हैं। देवप्रयाग तीन पहाड़ों पर स्थित है।

पुल पार करते समय मस्त हवा के झोंके बार-बार हम लोगों को चूम रहे थे। पुल निर्जन-सा था, एक ओर सिर्फ दो पण्डे शिकार के बारे में बातें कर रहे थे।

शहर में लड़कियों की दृष्टि आकर्षित करने के लिए जैसे आवारे छोकरे लोग घूमते हैं—मरे हुए पशुओं के गन्ध से गिद्ध मँडराने लगते हैं, वैसे ही यात्री देखते ही उनपर टूट पड़ते हैं ये जनसेवक !

उत्तर खण्ड के शहरों में जैसे हरिद्वार को पंजाबियों का कहा जा सकता है, हृषीकेष पहाड़ियों का, वैसे ही अगर कोई देवप्रयाग को 'पण्डा नगरी' कहे तो किसी को भी एतराज न होगा।

पुल पार करके हम दूसरे पहाड़ पर आये। ऊँची-नीची पहाड़ी रास्ते। जनहीन सर्पिल पथ, बाजार को पार करते हुए न जाने कहाँ चला गया है।

कंकड़ बिछी सड़क के दोनों ओर छोटे-छोटे मकान थे। उन मकानों से अस्फुट गुंजन सुनाई पड़ रहा था। बीचोंबीच खड़े कई लैम्प-पोस्ट झपकी ले रहे थे। किरासिन लैम्प के प्रकाश में राह थोड़ी दूर तक दिखाई दे रही थी। फिर अंधेरा ही अंधेरा। अन्धेरे के बीच सोये हुए थे कई लावारिस कुत्ते।

दूसरे पुल को पार करते समय, चहल-पहल दिखाई पड़ी। पहाड़ के ऊपर एक मकान से प्रकाश आ रहा था। हमें वहीं जाना था। हम आम के पेड़ के नीचे वाले उस रोड के पास आ गये। दरवाजे पर 'बुकिंग आफिस 'टिहरी ट्रांसपोर्ट' का छोटा सा बोर्ड लटक रहा था।

अन्दर टेबुल पर एक हरीकेन रखी हुई थी। उसी के दोनों ओर

भूतों की तरह बैठकर दो आदमी कुछ काम कर रहे थे। बाहर कई पण्डे यात्रियों को लेकर आपस में लड़ झगड़ रहे थे।

'नमस्ते।' कहकर मैं अन्दर चला आया।

"नमस्ते। कहिये?" एकने सिर उठाकर मेरी ओर देखा।

'जी, आपने सुबह जानेवाली बस की खबर लेने के लिए कहा था।'

'ठीक है। बस आ गयी है। देखिये, रिजर्वेशन तो कर दे रहा हूँ, मगर सुबह मुसाफिर मिलने पर ही गाड़ी जायगी।'

'धन्यवाद।'

३

सुनहली धूप में देवप्रयाग सोने-सा दमक रहा था। नागफनी से भरे सामने वाले पहाड़ पर बसी हुई बस्ती के पीछे, झाँकते हुए सफेद-सफेद बादलों के टुकड़े अजीब से लग रहे थे।

टहलने के लिए धर्मशाले से बाहर निकलते ही देखा आसन लगा कर बैठे थे एक महाराज। वे बड़े भाव से केदार, बद्री, गंगोत्री, जमनोत्री की कहानी सुना रहे थे। सामने कुछ पैसे पड़े थे।

पेशावर शहर के पुराने कस्बे में एक बाजार है, जिसे कहते हैं 'किस्सा खानि' या 'किस्सा—कहानी' बाजार। इस बाजार में दूसरे सामानों की तरह जो चीज बिकती थी, वह थी किस्सा या कहानी।

किस्सा सुनानेवाला एक दरी बिछाकर बैठ जाता था और सुनने वालों का झुण्ड बैठता था उनके आमने-सामने। और एक या दो आने के बदले वह किस्सा सुनाते थे। इस तरह की कहानियों की दूकान संसार में और कहीं थी या नहीं, यह मैं नहीं जानता। सुना है, उन दिनों यूरोप की सरायों में किस्सा सुनानेवाले रहते थे।

किस्सा सुनाने वाले को मैं पीछे छोड़ आया।

ऊँची-नीची पथरीली सँकरी गली के किनारे एक चाय की दूकान देख कर मैं रुक गया। दूकानदार ने गली में एक बेंच रख छोड़ी थी। लोगों के खिसक कर बैठने से मेरे लिए भी जगह बन गयी। चाय बनने में देर न लगी। चुस्की लेते हुए देखा कि, एक नौजवान पण्डा बार बार मेरी ओर देख, न जाने क्या जानने की कोशिश कर रहा था।

तो हजरत ने मुझे कोई मुर्गा समझ लिया है क्या? अगर ऐसी बात हो, तो उसे परेशान ही क्यों न किया जाय? मैं तरकीब सोच ही रहा था कि एकाएक वह चिल्ला पड़ा, 'रंजू तू!'

'आप?' उसके मुँह से अपना नाम सुनकर मैं चकित रह गया।

'बहुत देर से ऐसा लग रहा था जैसे कहीं देखा है। मगर कहाँ, यह याद नहीं कर पा रहा था। तूने मुझे नहीं पहचाना? अबे मैं, मैं हूँ शंकर!'

'शंकर!' मैं चीख पड़ा। उसे न पहचानने की कोई बात न थी, फिर भी पहचानने में देर लगी।

'तो शंकर, तू यहाँ?'

'बताता हूँ। पर प्यारे, तू इस रास्ते पर कैसे? दिल की चोट तुझ जैसे'एथिष्ट' को गुमराह करने की वजह तो नहीं बनी?' फिर चाय के पैसे चुकाकर कहा, 'चल।'

'कहाँ?'

'चल तो सही।'

बिना कुछ बोले मैं उसके साथ चलने लगा।

आसनसोल में शंकर रहता था अपने भैया-भाभी के साथ।

उसके भाई कांग्रेसी थे और वह काम करता था कुली-मजदूरों के बीच। उन्हें सचेत करता था उनकी माँग के बारे में। अलग अलग

राजनीतिक दृष्टिकोण होने के कारण दोनों में अक्सर बहस हुआ करती थीं, पर एक दूसरे को चाहते बहुत थे।

आसनसोल में पहले-पहल चुनाव की धूम मची हुई थी। शंकर को खाने-पीनेकी फुर्सत नहीं मिलती थी। अक्सर रात कटती थी पार्टी आफिस में। मगर भाभी रोज खाना लेकर बैठी रहती थी। खाना खाते-खाते वह चुनाव की चर्चा करता था।

'अरे भाभी आज तो मजा आ गया। सुबह भैयाके कार्यकर्त्ताओं का जलूस चेलिडांगा से जा रहा था। जलूस के सामने झण्डा लिए चल रही थीं दो सण्डमुसण्ड ब्रीटेन-ब्रांड लड़कियाँ। उनके चमकते बदनपर खद्दर का लिबास। माशा अल्लाह! क्या गजब की लग रही थीं वे, इसका तुम खुद ही अन्दाज लगा सकती हो। पीछे पूरा जलूस जी-जान लड़ाकर चिल्ला रहा था—'कांग्रेसी उम्मीदवार शेखर को वोट दो।'

वे समझ रहे थे कि, वोट-बोट मिलने का नहीं, ऊपर से चपत न मिले तो खैरियत है। मगर बेचारे करें तो क्या, प्रचार के लिए नगद नारायण जो मिलता है, उसका लोभ कैसे सँभालें?

पर भाभी मजा तो तब आया, जब रास्ते में हम लोगों से भेंट हुई। उन दो गौरांग मोटी मोटल्लियों को देख कांग्रेसी बैलकी जोड़ी कहकर हमलोगों ने ऐसा परेशान किया कि आँसू से उनके रूमाल तर हो गये। मैं कह देता हूँ भाभी, भैया हारेंगे यह तो मानी हुई बात है, मगर जमानत जप्त हो तो सिर्फ उन दो बैलों की जोड़ीके लिए।'

शंकरकी बातें सुनते-सुनते भाभी लोटपोट होतीं। तब वह कहता था, 'सिर्फ हँसने से काम न चलेगा, वोट भी हमी लोगों को देना है।'

मगर आसनसोल का लगाव ज्यादा दिन शंकर को रोक न सका।

अचानक जैसे आया था, वैसे ही चुनावके बाद एक दिन हवा के भीषण झकोरे की तरह किसी से कुछ कहे बिना ही जाने कहाँ चला गया।

स्मृतियाँ साकार हो उठीं और क्षणभर के लिए उनमें मैं खो-सा गया। उन दिनों मेरे और शंकर में कोई अन्तर नहीं था।

हम बातचीत करते-करते काफी दूर आ गये।

रास्ते भर शंकर अपना दास्तान सुनाता रहा।

मैंने पूछा—'तू क्या कर रहा है ?'

'यात्रियों को मूड़ रहा हूँ यानी पण्डागिरी कर रहा हूँ।'

'भई खूब! पेशा तो लाजवाब अख्तियार किया है तूने!'

पर वह चुप रहा। देर तक चुप रहते देख मैंने कहा—'पर प्यारे, मेरी बात मान और इस शराफत के पेशे को लात मारकर केदार बद्री होते हुए लौट चल मेरे साथ।'

'केदार बद्री तक शायद चल सकूं, पर आगे नहीं....'

'क्यों ?'

'कुछ नहीं।' एक लम्बी साँस लेते हुए उसने कहा, 'मैं यहाँ आकर एक लड़की से प्यार करने लगा हूँ, जिसे छोड़कर जाना मेरे लिए नामुमकिन है।'

'यह बात है, तो आप हैं कौन ?'

'नाम है कलावती। जिस पण्डे के यहाँ काम करता हूँ उसी की ही स्त्री है।'

'परकीया!'

'तो क्या हुआ ?'

'बुरी बात है।'

'हाँ तेरे साथ केदार बद्री चलूँगा। रातको मेरा इन्तजार करना। वही काली कमलीवाले धर्मशाले में हो न ?'

'हाँ, पर मैं आज ही जानेवाला हूँ।'

'कोई बात नहीं, कल चले जाना।'

'अगर तू चलता है तो एक दिन रुकने में मुझे कोई एतराज नहीं।'

'ठीक है, रात को मिलूंगा।'

खाना खाने के बाद मोमबत्ती की मन्द रोशनी में किताब पढ़ने की कोशिश कर रहा था। शंकर का इन्तजार था, जाने कब आये।

'रंजू !'

उसके आते ही मैं बाहर निकल आया। भीतर गरम था, सो बाहर पत्थर पर आ बैठे। देर तक इधर-उधर की बातें चलती रहीं। फिर एकाएक शंकर ने कहा'—मैं तेरा साथ न दे सकूंगा।'

'क्यों ?'

'बात यह है कि, आज दोपहर को पण्डाजी, यानी कला के पति, यात्री लेकर केदारजी चले गये हैं और वह अकेली है। मेरे इन्तजार में वह तारे गिनती होगी, भला इस समय मैं कहीं जा सकता हूँ ?'

'यह सब मतलब की बातें छोड़ दे, चल मेरे साथ।'

'अबे तू है निरा नीरस आदमी, प्यार का मजा तू क्या जाने ? तू जा, मैं चलूँ अपनी रानी के पास।'

वह उठकर चल दिया, मैं कुछ कह न सका।

छलना के पीछे दौड़ रहा है शंकर। एक ब्याही औरत को अपना बनाने का ख्वाब देख रहा है। काम अच्छा है या बुरा, इसके बारेमें कुछ सोचना नहीं चाहता।

पर, उसे क्या दोष दूँ ? प्रेम ने भला नीति-नियमों को कब माना है !

महाभारत में भला किसकी राह देखी अर्जुन ने ? किस नैतिकता को माना है कृष्ण ने ? किसकी परवाह की थी रजिया बेगम ने, मेरी वालेस्का या लेडी हैमिलटन ने ?

सुबह हो गयी।

मेरा नौकर जंगली बस में सामान रख रहा था। मैं थोड़ा आगे बढ़कर संगम की ओर आया।

गरजती हुई गंगा व्याकुलता के साथ बह रही है अलकनन्दा की ओर, उससे मिलने के लिए। शहर से दूर दो सहेलियाँ बहुत दिनों के बाद मिलीं। गंवारिनों के मिलन में भी गँवारापन झलक रहा था।

पेट्रोल की उग्र गंध पाते ही मैं बस में आकर बैठ गया और थोड़ी ही देर बाद बस छूटी।

मेरा मन व्यथित हो उठा। देव प्रयाग से ही गंगा को पीछे छोड़ना पड़ा ! अब वह फिर मिलेंगी केदार बद्री में, इसके पूर्व नहीं।

गंगा से मेरा घनिष्ठ परिचय था। बड़ा हुआ हूँ गंगा को देखते-देखते। रंगीनियां देखीं गंगा के किनारे। अब उसी गंगा को पीछे छोड़े जा रहा हूँ।

नीचे से बह रही है अलकनन्दा।

पुरुष के लिए जैसी नारी वैसी ही नदी। आदिकाल से पुरुष सीने से लगाना चाहा है उन्हें, डेरा लगाया इन दोनों के आस-पास। मगर स्वभाव से नागिन नदी और नारी ने, उसके किसी भी दुर्बलता का सुयोग पाते ही उसे डंस लिया है।

मगर पुरुष को चैन नहीं।

नारी और नदी के पीछे वह सदा से ही दौड़ता आया है, आज भी दौड़ रहा है और आगे भी दौड़ता रहेगा।

जैसे लोग बीवी को घर में छोड़ बांधवियों के साथ सिनेमा जाते हैं, वैसे ही हम भी गंगा को छोड़कर अलकनन्दा के साथ आगे बढ़े।

घूम-घूमकर बसें ऊँचाई पर चढ़ रही हैं।

एक ओर विज्ञान, दूसरी ओर प्रकृति।

संघर्ष में विज्ञान ने प्रकृतिपर विजय पा लिया। आज बसें दो हजार फुट की ऊँचाई से चल रही हैं। शायद एक दिन यह भी देखने को मिलेगा, जब बस से ही लोग उनतीस हजार दो सौ फुट तक पहुँच सकेंगे। पत्थर का देवता उस दिन भी आज की तरह पत्थर ही रहेगा, मगर लोगों के विश्वास में कमी आ जायगी।

बसें अपनी धुन में चल रही हैं। अवसन्न यात्री अलसाये हुए हैं, सोच रहे हैं कि यह सफर किसी तरह खत्म हो!

मैं खिड़की से बाहर झाँक रहा था।

आजकल पहाड़ में अपने धुन में गानेवाले भोले-भाले पहाड़ी या निर्जन-प्रेमी योगी नहीं मिलते, मिलते हैं जिन्दगी के बोझ ढोते-ढोते कमर झुका देनेवाले पहाड़ी कुली। योगियों की जगह दिखाई पड़ते हैं पहाड़ी युवती की जवानी का सौदा करनेवाले ऐय्याश सौदागर! जो युवतियों पर बड़ी कृपा करते हैं। जरूरत पड़ने पर उसकी सारी जिम्मेदारियाँ सामयिक रूप से अपने ऊपर ले लेते हैं। गहने भी बनवा देते हैं। दिन में यह लोगों की नजर में खटक सकता है, सो हारून-अल-रसीद की तरह रात को उनकी खबर लेते हैं।

आश्रम की जगह दिखाई पड़ता है मिनिस्टर, डिप्टी मिनिस्टर का ग्रीष्मावास!

'उतरो भई, कीर्तिनगर आ गया !'

कीर्तिनगर आते ही क्लीनर चिल्ला चिल्लाकर सबको सचेत करने लगा। जल्दी कीजिये, पुल के उस पार बसें खड़ी हैं। जल्दी कीजिये नहीं तो छूट जायगीं।'

बस छूटने के नाम से सबके होश उड़ गये। जल्दी आगे निकलने के लिए एक दूसरे से लड़ने-झगड़ने लगे। सब जब उतर गये, तो जंगली और मैं उतरा।

महाकाल देह को वहन करता ही नहीं, कभी-कभी तो कीर्ति को भी नहीं। शायद यह स्वाभाविक ही है। जैसे समय समय पर जरूरी चीजों को भी हमलोग त्याग देते हैं, वैसे ही महाकाल ने कीर्तिनगर की कीर्ति कहानी को त्याग दी है। सिर्फ नाम से ही धुँधला अस्तित्व रह गया है।

कीर्तिनगर की कीर्ति लोग भूल चुके हैं, मगर कीर्तिनगर को नहीं।

अलकनन्दा के आरपार बसा हुआ है। कीर्तिनगर और श्रीनगर, विगत सौन्दर्य के दो कस्बे। उन दोनों के शौर्य की परीक्षा की कसौटी या दोनों का संयोजक एक पुल है।

पुल पर से चलते समय इतिहास के खोये हुए पृष्ठ साकार हो उठे। मेरी आंखें धोखा खाने लगीं। कंक्रीट जमाया हुआ पुल, जैसे फिर से आधी शताब्दी आगे की लकड़ी के झूलते हुए पुल में परिवर्तित हो गया है।

एकाएक लाठियों की एक दूसरे के साथ भिड़ने की आवाज आयी।

अलकनन्दा में बहाये गये मुर्दे फिर से जाग उठे। खूंखार आँखों से चिनगारियाँ बरसाते हुए दोनों राज्य के लठैत एक दूसरे से भिड़ गये।

लाठियों के भिड़ने की आवाज, जख्मियों की चीत्कार तथा थोड़ी देर के बाद अलकनन्दा में कुछ फेंकने की 'छप' 'छप' आवाज। फिर सब शान्त !

न जाने किस जमाने से इस पुल पर लड़ाइयाँ होती आयी हैं और न जाने कितना खून पी चुका है यह प्यासा पुल !

दिन बीतने लगा ।

खून सूख गया, लोगों के चलने से खून का दाग तक मिट गया ।

धीरे-धीरे नसों का खून भी ठण्डा पड़ गया । राजरक्त में शक्ति के 'कर्पसल' बहुत कम दिखाई देने लगा । अक्षम का बोझा कोई नहीं ढोता । निर्वीर्य राजतन्त्र का अन्त हो गया एक दिन ।

पहले राजा के डर से बाहर के लोग जहाँ पैर रखने की भी हिम्मत नहीं करते थे, वहाँ मैदान के लोग आजकल अपना सीना तानकर आने जाने लगे हैं, उसी पुल पर से, उसी राज्य से होते हुए ।

श्रीनगरसे 'श्रीनगर बस स्टैण्ड' तीन मील का रास्ता है । रास्ता बहुत ही सुन्दर है ।

बस एकाएक बीच रास्ते में रुक गयी ।

'क्या बात है भई ?' मैंने कण्डक्टर से पूछा ।

'जी टीका लगेगा ।'

मैंने बाहर झाँककर देखा पब्लिक हेल्थ का एक कैम्प लगा हुआ था । जहाँ एक डाक्टर और एक कम्पाउन्डर यात्रियों को इन्जेक्शन दे रहे थे । कण्डक्टर ने सबको उतरने के लिए कहा—टीका लगाना है ।

'का कहत हउवा ? टीका लगावे के पड़ी ?' एक ग्रामीण ने कहा ।

'हाँ ।'

'सुई-फुई हम न लगाइब ।'

'बीमारियाँ रोकने के लिए सुई लगायी जा रही है ।'

'मर जाइब सो अच्छा, मगर टीका न लगाइब ।'

'मगर टीका लगाना जरूरी है ।'

'ठेंगे से जरूरी बाय ! न मनिहन तो पान खाये बदे चार-छः आना पैसा दे देहल जाई ।'

उसका जवाब सुन बेचारा कन्डक्टर आगे कुछ नहीं बोला ।

टीका लग जाने के बाद बसें छुटी ।

रास्ता अच्छा होने के कारण श्रीनगर पहुँचने में देर न लगी । गढ़वाल की प्राचीन राजधानी श्रीनगर । मगर आज अनादृत, अवांच्छित सा पड़ा हुआ है । श्रीनगर की 'श्री' अब नहीं रही, रह गया है नगर का ध्वंसावशेष । और उस हतश्री श्रीनगर को देखकर विषण्ण हो उठते हैं श्रीनगरवासी । स्मृति-पट पर राजधानी के अतीत की गौरवमयी प्रतिच्छवि पड़ते ही आँखें सजल हो उठती हैं ।

बस से उतर कर मैंने सिगरेट सुलगाया ।

रुद्रप्रयाग के लिए बस मिलने में डेढ़-दो घंटे की देर थी । इसीलिए जंगली को शेड के नीचे बैठाकर मैं स्नान के लिए चल पड़ा । नहाकर जब लौटा तब सारा शरीर हल्का सा लग रहा था । भूख काफी लगी थी । टिकट लेकर मैं खाना खा आया ।

शेड में लौटकर देखा जंगली झपकी ले रहा था । मैंने उसे खाना खाने के लिए पैसे दे दिए । जंगली दरी बिछा कर चला गया । दरी पर लेटकर मैंने ताश का पैकेट निकाला ।

पेसेंस के लिए ताश लगाया । मैं अपने मन से पत्ते मिलाता जा रहा था ।

'ईंट की बेगम को यहाँ रखिये ।' मेरी बगल में से खेल देखनेवाले सज्जन ने एकाएक मेरी चाल काट दी । मैंने देखा उनका कहना ठीक था, ईंट की बेगम को मैं गलत जगह पर रख रहा था ।

ईंट की बेगम ठीक जगह पर रख, मैंने उनकी ओर देखते हुए पूछा, 'आइये खेलेंगे ?'

'नहीं कोई बात नहीं। आप खेलिए।'

'क्यों कोई एतराज है ?'

'अजी आप भी कैसी बातें करते हैं साहब।' वे मेरी दरी पर आकर बैठ गये। मैं भी कायदे से बैठा। मैं सोच रहा था कि दो आदमियों में क्या खेला जाय, उसी समय उन्होंने बुलाया, 'कौशल्या।'

नाम सुनते ही दृष्टि उठाई, देखा, तीस-पैंतीस की एक तरुणी। बादलों के आड़ में सूरज काफी ऊपर चढ़ आया था, मगर सुन्दरता से उम्र छिपी सी लगती थी। ताजमहल की उम्र भी तो काफी है। फिर भी सौन्दर्य में तिल भर भी कमी नहीं पड़ी। कौशल्या की उम्र अधिक है तो क्या ? जवानी से उम्र का क्या सम्बन्ध ?

'कहिए ?' कौशल्या ने पूछा।

'जरा यहाँ आओ।

उठकर वे उनके सामने आ खड़ी हुईं। पूछा—'क्या बात है ?'

'कोई खास बात नहीं, ताश खेलना है !'

'ताश !' वह चौंक पड़ी। एक अनजान व्यक्ति के सामने बुलाकर उसे ताश खेलने की बातें कहा जा सकता है, उसे इसकी कल्पना भी नहीं थी। फिर भी उन्होंने अपने को सँभाल कर कहा, 'सुशीला अकेली है।'

'कोई बात नहीं, हम भी तो यहीं रहेंगे।' उन्होंने उनका हाथ पकड़ कर दरी पर बैठाते हुए कहा—'अरे शरमाने की क्या बात है ? यह हैं...' परिचय देते जाकर वे हँस पड़े, 'यह कौन हैं, यह मैं खुद ही नहीं जानता। आप ही बताइये जनाब।'

'जी मुझे रञ्जन कहते हैं।'

'मेरा नाम है सोहनलाल रस्तोगी। आप हैं मेरी क्या कहूँ···साली, मिसेज कौशल्या सक्सेना और वह है मेरी लड़की सुशीला, जिसके इलाज के लिए केदार-बद्री जा रहा हूँ।'

'इलाज के लिये केदार-बद्री?'

'जी हाँ, कई साल से बाँया पैर लकवे का शिकार हो गया है। कितने डॉक्टरों को दिखाया, दवा करवायी पर अच्छा होने का नाम ही नहीं। चन्द महीनों पहले हमारे यहाँ एक संन्यासी आये थे, उन्होंने उसे देख केदार-बद्री जाने के लिए कहा।'

'ओह!' बेडिंग पर अलसाये हमारी ओर पीठ करके बैठी हुई किताब पढ़ने वाली लड़की की ओर एकबार देखकर मैंने पूछा, 'क्या खेलियेगा?'

'रमी!' कौशल्या प्रकृतिस्थ हो चुकी थी।

'रमी!' वह तो मैं नहीं जानता।

'तो?'

कौशल्या की जिज्ञासा के उत्तर में मैं चुप रहा।

'अगर सिखा दिया जाय तो खेल सकेंगे?'

'क्यों नहीं, पर जमेगा नहीं। हाँ आप लोगों को ब्रिज आता है?'

'जी हाँ, अच्छी तरह।'

'तो ब्रिज ही खेला जाय क्यों?' सोहनजी ने कौशल्या की ओर देखा।

'पत्ते बाँटिये, खेलने के लिए मैं सुशीला को भी ले आती हूँ।' वह उठ खड़ी हुई।

'वे पढ़ रही हैं। रहने दीजिये, हम डमी लगाकर ही खेल लेंगे।'

'ठीक है।' वह बैठ गयी।

ताश फेंटते हुए सोहनजी ने पूछा, 'आप तो अकेले हैं न?'

'जी हाँ, साथ जंगली है। और आप ?'

'हम तीन, ऊपर से डंडी कुली·····'

'कार्ड लक और लव लक' जपकर मैंने ताश उठाया। पत्ते खास अच्छे नहीं थे, फिर भी न जाने किस जोश में मैं बोल गया। जब होश आया तो देखा मुझे फोर स्पेड का खेल करना है। मन ही मन मैं डमी की दुआ माँगने लगा।

कौशल्याजी ने ताश फेंका।

'सिगरेट प्लीज !' सिगरेट का पैकेट बढ़ा दिया सोहन जी ने।

'थैंक्यू !' मैंने एक सिगरेट उठाते हुए धन्यवाद दिया। उन्होंने लाइटर मेरी ओर बढ़ाया, फिर अपना सिगरेट सुलगाकर उसे बुझा दिया।

'बड़ा अच्छा हुआ आप मिल गये' कौशल्याजी ने कहा, 'जबसे हरिद्वार छोड़ा तबसे मैं मनहूस की तरह दिन बिता रही हूँ।'

'क्यों ?'

'क्यों, क्या ? जैसी जगह वैसे ही लोग। न अच्छा खाना मिलता है और न बैठकर दो बातें की जाय ऐसे लोग ही···'

'ओफ !' अब समझा ! मैं मन ही मन मुस्कराया। बचपन में मैंने पढ़ा था, 'दी काऊ इज ए फोरफुटेड एण्ड डोमेस्टिक एनिमल।' मगर अब देखता हूँ संसार में और भी एक डोमेस्टिक एनिमल है, मगर उन्हें 'ह्यूमनबीइंग' कहते हैं। 'काऊ' की तरह घर के बाहर कदम रखते ही उन्हें घर की याद सताने लगती है।

खेल जब काफी जम गया तो उस समय एकाएक जंगली आकर टपक पड़ा, 'बाबूजी, बसें अभी मिलेंगी।'

'इतनी जल्दी ?'

'हाँ, बाबूजी समय तो हो चुका है ।'

'समय हो गया !' सोहनजी चौंक पड़े, 'मैंने अभी तक टिकट ही नहीं लिया ।'

'तो जल्दी कीजिये ।'

सोहनजी काउन्टर की ओर चल दिये, कौशल्याजी उठती हुई बोलीं, 'मैं सामान बँधवा लूँ ।'

'हाँ सब ठीक कर लीजिये । यह बस छूटने पर शाम से पहले कोई भी बस नहीं मिलेगी ।'

स्टैण्ड पर कतार से बसें खड़ी थीं। यात्री अपने-अपने बस में जाकर बैठ रहे थे। मैंने जंगली को अपने बस का नम्बर बता दिया, वह सामान लेकर वहाँ जा बैठा।

सभी बसें भर गयीं, कुछ यात्रियों को जगह भी नहीं मिली।

शेड के नीचे मैं अशांत होकर चहलकदमी कर रहा था। सिगरेट पर सिगरेट सुलगाता जा रहा था। क्यू में खड़े सोहनजी को टिकट मिलने में काफी देर थी और इधर बसें छूटने ही वाली थीं। जंगली खिड़की से हाथ निकाल कर बुला रहा था।

कौशल्याजी मेरे अन्तर्द्वन्द्व को समझ गयीं, कहा, 'जाइये आपकी बस छूटने ही वाली है, रास्ते में हम आप लोगों को पकड़ ही लेंगे ।'

'वही ठीक रहेगा ।'

'हाँ ।'

'नमस्ते ।'

'नमस्ते ।'

४

'जागो ! रुद्र जागो !

महारुद्र जागो ।

कालरुद्र जागो ।

जीवन रुद्र जागो ।'

अलकनन्दा की गेरुवे रङ्ग के सोते में नहाकर, महाकाल के पुजारी रुद्र को जगाने का ओजस्विनी मन्त्र पाठ करते हुए रुद्रेश्वर के मन्दिर की ओर बढ़े ।

जाग्रत रुद्रभैरव, रुद्रेश्वर ।

रुद्रेश्वर के नाम से वहाँ का नाम पड़ा—रुद्र प्रयाग ।

खाना पकाने के लिए पानी लाते समय नदी किनारे भेंट हो गयी तेज इस महाकाल के पुजारी से । मैं विस्मित होकर उन्हें देखता ही रह गया । पर वे लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाते हुए दक्षिण की ओर पेड़ों के पीछे अदृश्य हो गये ।

पानी लेकर मैं ऊपर आया। बेचारा जंगली एक पेड़ के नीचे तीन ईंटों से चूल्हा बनाकर लकड़ी जलाने का प्रयत्न कर रहा था, पर लकड़ियाँ कुछ भींगी होने के कारण केवल धुआँ दे रही थीं। आस-पास कई स्त्रियाँ उसके प्रयत्नों को देख मुँह पर कपड़ा रख हँस रही थीं। मैंने देखा इन लकड़ियों से तो बीरबल की खिचड़ी पक चुकी। इसीलिए फिर लकड़ी लाने को कहा जंगली से।

खाना खाते-खाते सूरज की किरणें तिरछी हो गयीं।

चीड़ से घिरे हुए पहाड़ पर मेघों का जमघट था। मैंने टहलने के लिए पहाड़ पर जाने की सोचा।

इधर रास्ता बनाने के लिए पहाड़ काटा जा रहा था, वहाँ से पुल पार करके बसस्टैण्ड के आसपास की चाय की दूकानों की ओर एक नजर डालकर दक्षिण की ओर आगे बढ़ गया।

पहाड़ पर चढ़ने का रास्ता यहीं से शुरू हुआ है।

पतली-सी पगडण्डी से कई पहाड़ी युवतियाँ पीठ पर बोझ लिए झुककर ऊपर चढ़ रही थीं। मैं भी उन लोगों के पीछे-पीछे चलने लगा।

काफी दूर तक आ जाने के बाद एक मोड़ पड़ा। कई रास्ते वहाँ से निकले थे। पहाड़ी युवतियाँ एक रास्ता पकड़ कर दूर कुटियों की ओर चली गयीं।

मोड़ पर आकर मैं रुक गया।

कई रास्ते ऊपर की ओर गये हैं, पर ठीक पता नहीं चल रहा है कि कौन एकदम ऊपर गया है। आस-पास कोई नहीं है और पहाड़ी युवतियाँ भी काफी आगे बढ़ गयी हैं। किससे पूछूँ?

कुछ देर तक खड़ा रहने के बाद मैं एक रास्ता पकड़ कर चलने

लगा। ऊबड़-खाबड़ पथरीला पथ—कहीं कहीं फिसलन। मैं सावधानी से चलने लगा।

दूर, चीड़ से घिरी हुई एक ऊँची-सी जगह मिली।

अपने आप में ही खोया मैं काफी ऊँचाई पर चढ़ आया था। एक पत्थर पर फिसलते ही आसमान की ओर नजर उठ गयी। मैं घबड़ाया, चारों ओर काले-काले बादल घिर आये थे। मैंने लौटने के लिए कदम बढ़ाया ही था कि, बड़ी-बड़ी बूँदें झरने लगीं।

पहाड़ी नारी और पहाड़ी मौसम दोनों ही खतरनाक हैं।...

मैंने आश्रय के लिए इधर-उधर देखा, पर छोटे छोटे खेतों के अलावा कहीं कुछ दिखाई नहीं पड़ा। मैं भीगते-भीगते नीचे उतरने लगा। कई पेड़ों के पीछे एक कुटिया दिखाई पड़ी। मैं उसी ओर दौड़ा। अधभींगे वहाँ पहुँचकर मैंने देखा, तीन युवक हँसी-मजाक कर रहे थे, मुझे देख चुप हो गये। वहाँ जगह बहुत थोड़ी थी, फिर भी उन्होंने खिसक-खिसक कर मेरे लिए जगह बना दी।

'ओफ! कपड़े तो भींग गये आपके...' उनमें से एक ने कहा।

'अजी, कपड़े की बात छोड़िये साहब, खैरियत है जो इस कुटिया के पास ही थे, नहीं तो न जाने इस पहाड़ी वर्षा में क्या हालत होती।'

'आप केदारजी जायेंगे या बद्री?'

'दोनों ही का विचार है, और आप? आप लोगों का परिचय?'

'जी, हमलोग भी दोनों ही जगह जाने की सोच रहे हैं। मेरा नाम है सुबीर सेन, आप हैं मेरे मित्र वंशीधर यादव और आप हैं विनय मजुमदार। हम सब कलकत्ते से आ रहे हैं।'

'जी मेरा नाम है रञ्जन, खास बनारसी हूँ।'

'आप क्या अकेले हैं?'

'हाँ, अकेले ही समझिये, साथ है एक नौकर या मित्र जो भी कहिये।'

'हमलोगों के दो और मित्र हैं, आप उनसे परिचित होकर खुश होंगे।'

'मिलकर मुझे प्रसन्नता होगी।'

शाम हो गयी थी। पहाड़ी वर्षा जिस तरह अचानक शुरू हुई थी, वैसे ही एकाएक बन्द हो गयी। हम उस कुटिया को छोड़ अंधेरे में बड़ी सावधानी से उतरने लगे।

भोर के पाँच अभी नहीं बजे थे।

मन्द हवा बह रही थी। हाथ में लाठी लिए मैं चल रहा था। जी चाहता था जिन्दगी भर इसी तरह चलता रहूँ।

गये साल तक लोगों को यहीं से पैदल यात्रा शुरू करनी पड़ती थी, मगर इस साल अगस्त्यमुनि तक बस का रास्ता बन गया है।

सुवीर और उसके साथी यहीं से पैदल यात्रा शुरू करनेवाले थे, मगर मोटा विनय तैयार नहीं हुआ। उसने कहा, 'मेरे लिए फिलहाल पैदल चलना असम्भव है। हां, अगर तुममें से कोई मुझे पीठपर लाद कर ले चलना चाहे तो मेरी ओर से कोई एतराज नहीं है। क्यों रञ्जनजी, मैंने ठीक कहा कि नहीं?' उसने मेरी ओर देखा, मैं मुस्कराते हुए आगे बढ़ गया।

अकेले ही चल रहा था, पीछे था जंगली।

रास्ते की बगलवाली चाय और दूध के दूकानदार बुला रहे थे, 'आओ सेठजी, आओ। चाय दूध पी लो।'

कुछ देर चलने के बाद मैंने थोड़ा सा दूध पी लिया।

यात्राकी थकान दूर करने के लिए यात्री जिस भगवानको धन्यवाद देते हैं; वे भगवान विष्णु या भारतरत्न डा० भगवानदास नहीं, कामेडियन भगवान भी नहीं, बल्कि वे भगवान हैं—ये चाय दूधवाले!

जनता की सरकार है, इसीलिए जैसी चोरबाजारी बुलन्द है, वैसे ही ये चाय दूधवाले हैं, इसीलिए यात्री थककर भी नहीं थकते। चाय-दूध पीकर नये जोश से आगे बढ़ते हैं।

हम बस्ती के पास आ गये।

पहाड़ी युवतियाँ खेत में काम कर रही हैं, पुरुष लोग कहीं चाय-दूध की दूकान, तो कहीं कुछ लेकर बैठ गये हैं।

बस्ती के सामने से गुजरते समय कुछ लड़के-लड़कियाँ पीछे पड़ गये, 'सेठजी सुई-धागा, सुई-धागा सेठजी!'

सुई-धागा की माँग की बात मैं सुन चुका था, पर मैंने साथ नहीं लिया। आज इन छोटे-छोटे बच्चोंको विमुख करते हुए मेरा मन व्यथित हो उठा। मैंने उसे निकालकर पैसे दिये, मगर पाँच साल की लड़की ने उसे लौटाते हुए कहा, 'पाइ पइसा नई सेठजी, सुई-धागा!'

कई गड़ेरिये बंशी बजाते हुए अपने भेड़ों के साथ चले जा रहे थे। भेड़ बकरियों के पीठपर छोटे-छोटे बोरों में चावल लदा हुआ था और गड़ेरियों ने अपने पीठ पर लोटा कम्बल से लेकर जरूरत के सारे सामान लाद रखे थे।

उसे पीछे छोड़ मैं आगे बढ़ गया। उसकी बंशी की सुरीली तान अब मेरे कानोंतक नहीं आ रही थी। मैं उससे दूर बहुत दूर चला जा रहा था। चलते-चलते अगस्तमुनि का आखिरी माइलस्टोन दिखाई पड़ा। मुसाफिर को मंजिल दिखी, मैंने तृप्ति की साँस ली।

बाबा काली कमलीवाला की धर्मशाला के चौकीदार अपनी काली जनेऊ पर हाथ फेरता हुआ मेरे सामने आ खड़ा हुआ, 'क्या चाहिये बाबूजी?'

'एक कमरा।'

'दिन भर रहेंगे ?'

'नहीं, यही तीन-चार घंटे।'

'कमरा तो बाबूजी, मिलना बड़ा मुश्किल है, भीड़ आप देख ही रहे हैं।'

'सो तो ठीक है' मैंने एक रुपया निकालकर उसके हाथ पर रखा, 'पर मुझे कमरे की सख्त जरूरत है।'

'जी आप जब इतना कह रहे हैं' रुपया गाँठ में खोसते हुए उसने कहा, 'तो मैं भला आपकी बात कैसे टाल सकता हूँ। आइये मेरे साथ।'

उसने कमरा खोल दिया।

जंगली ने अच्छी तरह से झाड़ू लगाकर कम्बल बिछा दिया। मैं बैठ गया। उसने थर्मस से एक कप चाय निकाल मेरे सामने रख दिया।

चाय की चुस्की लेते-लेते मैंने चौकीदार की ओर देखा। 'पावर कोरप्स' यह बात बतला दिया बृटिश हुकूमत ने, देश स्वतन्त्र होने के बाद हमलोगों ने देखा 'करप्शन' और आज देख रहा हूँ 'करप्शन इज दी कॉज आफ कम्फर्ट'। हराम से आराम मिले!

चाय पीकर सामने की दूकान से चावल-दाल मँगा लिया। आलू कुछ पहले का ही पड़ा हुआ था। जबसे देवप्रयाग छोड़ा तबसे आलू छोड़कर दूसरी कोई भी तरकारी नहीं मिली। सुना है कहीं-कहीं एक-आध गोभी-ओभी दिखाई पड़ जाती है, पर गोभी तो क्या, यहाँ तो गोभी का पत्ता भी नहीं दिखा।

गली में लगी दूकानों में झाँका, पर सड़े आलू के सिवा कहीं भी कुछ दिखाई नहीं पड़ा।

मैंने एक सिगरेट सुलगायी, फिर घूमते-घूमते मैदान की ओर आ गया।

'ओ सेठजी।'

जिस ओर से आवाज आयी थी, उस ओर देखा। कई अखरोट के पेड़ों के नीचे एक डण्डी खड़ी थी। डण्डीवाले चिलम में दम लगा रहे थे। डण्डी पर बैठी एक युवती मासिक-पत्र पढ़ रही थी। मुंह मासिक-पत्र के पन्नों में छुपा हुआ था। चूड़ियाँ और साड़ी का पल्ला देख मैंने सोचा कि मेरी ही भूल हुई होगी, सो लौटने के लिए जब कदम उठाया तो उसके हाथ से पत्रिका गिर गयी। मुस्कराती हुई तरुणी ने पूछा, 'पहचान नहीं न पाये?'

'मुझसे कह रहीं हैं?' हैरान होकर मैंने पूछा।

'नहीं तो क्या मैं चट्टानों से बोल रही हूँ?'

'पर···पर····' मैंने तुतलाते हुए कहा, 'मैंने आपको नहीं पहचाना।'

'कोई बात नहीं, मैं आपको जानती हूँ।'

'आप मुझे जानती हैं?'

'मालूम तो ऐसा ही पड़ रहा है।' वह मुस्करायी।

'आपको कहीं धोखा तो नहीं हुआ? मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है।'

'आपका नाम रंजन तो नहीं?'

'जी हाँ।'

'तब तो मुझे धोखा नहीं हुआ।' बड़े भाव से वह अपनी उँगली नचाने लगी।

'पर मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा है।'

'सब कुछ मेरी ही समझ में आ रहा है ऐसी बात नहीं है। और फिर समय-समय पर सब बातें सबको समझ में आया भी नहीं करतीं।'

'यानी ?' उसकी उलझी-उलझी भाषा से परेशान-सा होता हुआ बोला—'आपका परिचय ?'

'तो आप परिचय जानना चाहते हैं।'

'अवश्य ?'

'इतनी जल्दी क्या है ?' उसने टालने का-सा प्रयत्न किया।

'आपने मुझे उलझन में जो डाल दिया है ?'

'तो सुनिये, अकेले मनहूसियत महसूस हो रही थी। सोचा आप जब मिल गये तो दो हाथ ताश ही क्यों न हो जाय ?' कहकर इधर-उधर टटोलकर एक पैकेट ताश मेरी हथेली पर रख दिया।

ताश देखते ही सब कुछ मेरे सामने स्पष्ट हो गया। यह वही ताश है जो मैं बस पकड़ने के लिए जल्दी से सोहनजी के पास छोड़ आया था। फिर भी नासमझकी तरह मैंने कहा—'ताश तो मुझे खेलना नहीं आता।'

'क्या नहीं आता !' उसने देर तक मेरी ओर देखते रहने के बाद विस्मित स्वर से कहा—'अजीब आदमी हैं आप ! झूठ बोलने में जरा भी संकोच नहीं होता आपको !'

'झूठ ! मैं झूठ बोलूँगा। मेरे खानदान में किसी ने झूठ नहीं बोला।'

'हो सकता है, आपके खानदान में झूठ बोलने की प्रथा न रही होगी, पर आप तो इस कला में माहिर लग रहे हैं।'

'क्या ऊल-जलूल बक रही हैं मेमसाहब !'

'आपका दिमाग खराब हो गया है।'

'मुझे भी वैसा ही लग रहा है। आप ही बताइये सुशीलाजी, आपसे मिलने के बाद भला किसका दिमाग ठीक रहा है ?'

तो आपने पहले ही पहचान लिया था ?' उसका गुस्सा हवा हो गया, वह मुस्कराने लगी, 'मैंने तो सोचा था कि आप ने अभी तक···तो कब आये आप ?'

'अभी-अभी मुश्किल से आधा घण्टा हुआ होगा, और आपलोग ?'

'आपलोग···यानी मैं; मेरे पहुँचने के बाद दस मिनट भी नहीं हुआ होगा कि आप मिल गये और मजा यह देखिए कि रुद्रप्रयाग में इतना खोजा पर आप दिखाई नहीं दिये।'

'बाकी लोग ?'

'वे तीर्थयात्रा का पुण्य बटोरते हुए पैदल आ रहे हैं। मैं डण्डी से आने के कारण आगे ही पहुँच गयी।'

'तो यहाँ बैठे-बैठे क्या कीजियेगा ? चलिए अगस्तमुनी का मन्दिर देख लिया जाय।'

'यहाँ बैठे-बैठे मक्खी मारना तो मैं भी नहीं चाहती पर मजबूरी है।' उसने अपने बाँये पैर का कपड़ा कुछ ऊपर उठाकर कहा—'देखिये।'

लकवे के कारण पैर लकड़ी की तरह सूख गया था।

'देखा ?' उसने मेरी ओर नजर उठायी।

'हाँ, पर सहारा देने पर तो चल सकेंगी न।

'हाँ।'

'तो फिर चलिए···'

'डण्डीवाले···'

'जी रानी जी' चिलम रखकर नत्थू उसके सामने आ खड़ा हुआ, 'क्या हुक्म है रानीजी ?'

'अगस्तमुनी के मन्दिर की ओर डण्डी ले चलो।'

डण्डी वाले ने डण्डी उठायी।

मन्दिर आ गया।

सहारा देकर मैं सुशीला को अन्दर ले गया। उसने प्रणाम किया दान के भिखारी अगस्त को!

मन्दिर के चहारदीवारी में बन्द राहुग्रस्त अगस्त की ओर मैंने देखा। पर उसमें उस अगस्त को नहीं पाया जिसे मैं खोज रहा था। जिसकी आँखोंमें संसार को भस्म करने की अग्नि थी, आज लोग उस तपस्वी को म्युजियम के निर्जीव वस्तुओं की तरह देखने आ रहे हैं। दया हुई तो दो-एक पैसा फेक रहे हैं, भिखारी के भिक्षापात्र में।

प्रकृति अविचार नहीं सहती।

सूर्य के प्रयोजन से स्वार्थी अगस्त चले विन्ध्य के पास।

आकाश को चूमता हुआ खड़ा है विन्ध्य पर्वत। उसे लाँघकर जाने की शक्ति सूरज में नहीं। ये अगस्त के चरणोंपर आ गिरे, 'मेरी इज्जत की रक्षा कीजिये देव।'

अगस्त ने आश्वासन दिया। सूर्य की इज्जत बचाने के लिये अपने प्रिय शिष्य के प्रतिकूल षड़यन्त्र रचने में भी हिचके नहीं। जैसा एकलव्य से दाहिने हाथ का अँगूठा माँगने में नहीं हिचके थे द्रोणाचार्य, कर्ण से कुण्डल माँगते हुए इन्द्र!

'सेवक के प्रति क्या आदेश है देव?' अगस्त को देखते ही विन्ध्य झुककर अपने गुरुदेव का चरण छूने गया।

'बस! बस!!' थोड़ा पीछे हटकर अगस्त ने कहा—'जबतक मैं न लौटूँ तबतक तुम ऐसे ही रहना।'

'यथा आज्ञा देव!'

झुका हुआ विन्ध्य अगस्त के लौटने की प्रतीक्षा करने लगा।

विद्रूप की हँसी हँसते हुए सूर्य झुके हुए विन्ध्य के पीठपर से अपना रथ दौड़ाकर पूरब से पश्चिम की ओर चले गये। विन्ध्य ने सोचा गुरुदेव को लौटने दो फिर उल्लू के पट्ठे को मजा चखाऊँगा।

मगर उसे क्या पता कि, गुरुदेव अब कभी नहीं लौटेंगे।

दिन बीते, वर्ष बीता, युग बीता। देखते-देखते दुनियाँ बदल गयी, पर विन्ध्य आज भी वैसा ही झुका हुआ है जैसा वह आज से कई युग पहले था। एक दिन के लिए भी उसने फरियाद नहीं की। सिर्फ मौन अभिमान से ओंठ काटता रह गया...

पर प्रकृति ने अविचार नहीं सहा। अपने निर्मम हाथों से उसने प्रतिशोध लिया। विन्ध्य अगर ऐसा झुका न होता तो अपने गुरुदेव की इस अवस्था को देख सिहर उठता, उसके आँखों से आँसुओं की धारा बहती।

विन्ध्य की गुरुभक्ति के आगे मस्तक स्वतः श्रद्धा से नत हो गया।

५

हम सब आगे चल पड़े।

इतना दूर अकेले ही आया था, अब काफी लोग साथ हो गये। सुवीर के मित्र तथा सोहनजी के परिवार के लोगों को लेकर नौ आदमी थे। ऊपर से डांडीवाले और दो कुली भी।

सुवीर के दोस्त नरेन हाल्दार और शिवनारायण चक्रवर्ती से भी परिचय हुआ। नरेन उमर में हम लोगों से कुछ बड़े तथा अनुभवी लग रहे थे। शिवनारायण कभी चित्र बनाया करता था, मगर एक लड़की के मुँह से अपने चित्र की कड़ी आलोचना सुनकर रंग से मुंह मोड़ लिया।

परिचय होते ही नरेन हाल्दर ने कहा—'अगर कुछ पूछताछ की जरूरत हो तो मुझसे पूछियेगा।'

'तो क्या आप पहले भी इधर आ चुके हैं?'

'नहीं, कुछ खोजपूर्ण किताबें साथ हैं।'

उनकी बात जब मैंने विनय से कही तो वह बोला—'अरे राम राम

भूलकर भी उनका दिया हुआ दवा या इनफारमेशन काम में लाने की कोशिश न कीजियेगा। नहीं तो आफत ही आ जायगी।'

सोहनजी से भेंट होते ही अपना सफर-टेबुल दिखाया। फिर समझाने लगे इस तरह अगर चला जाय तो कब कहाँ पहुँचेंगे।

'आज चन्द्रापुरी तक ही चलेंगे, याद रहेगा न? हाँ, सबसे कह देना।' कहकर सुबीर से मिलने चले गये।

आध घण्टा के बाद हमलोग रवाना हो गये।

सुशीला डाण्डी पर थी और बाकी सब पैदल चल रहे थे।

निकले तो थे सब एक साथ ही, पर कहीं किसी के फोटो उतारने में तो कहीं किसी के स्केच बुक लेकर बैठ जाने के कारण अलग होने में देर न लगी।

सभी रास्ते 'रोम' में जाकर मिलते हैं, पर केदार के लिए रास्ता एक ही है। इसीलिए राह भटकने का भी डर नहीं है। आँख मूँद कर भी कोई मंजिल पा सकता है।

समतल जमीन पर से चल रहा था, साथ में थे सुबीर और जंगली।

इधर-उधर की बातें हो रही थीं।

'आप भाग्यवान पुरुष हैं, रंजन जी!' एकाएक सुबीर ने कहा।

'क्यों?'

'क्यों, यह मत पूछिये। मेरी नजर ने अगर धोखा नहीं खाया है, तो आप वाकई लकी हैं।' उसने अन्दाज से मुस्कराकर कहा।

थोड़ी देर तक चुपचाप रहने के बाद, वे अपने पुराने टापिक पर लौट आये, 'जब मैं कालेज में पढ़ता था, तब एक लड़की से आँखें मिल जाने पर मैंने दिन में ही तारे गिनना शुरू कर दिया था। मेरे फूफा रहे अनुभवी आदमी, देखते ही उन्होंने रोग का पता लगा लिया। डाक्टर के

बदले पण्डितजी की तलाश हुई। जन्म कुण्डलियों के साथ-साथ दक्षिणा देकर जल्दी मूहूर्त निकलवा कर शहनाई बजवा दी। फिर आफिस में जोत जाने के बाद कभी 'बॉस' तो कभी श्रीमतीजी का लेक्चर सुना करता हूँ…'बोलते-बोलते एकाएक वह रुक गया।'

'रुक क्यों गये?' मैंने पूछा।

'वह देखो।'

'क्या?'

'चाय की दूकान के पास…'

मैंने उसकी दृष्टि का अनुसरण करते हुए देखा—सुशीला की डाण्डी खड़ी थी, वह रास्ते की ओर देखते-देखते चाय पी रही थी। उसने हाथ उठाकर मुझे बुलाया।

'जाओ, फरमान आ गया। मैं चल रहा हूँ।' सुधीर जंगली को साथ लेकर आगे बढ़ गया।

'एक गिलास चाय देना सेठजी को।' दुकान के सामने जाते ही सुशीला ने कहा—फिर मुस्करायी, 'काफी देर से राह देख रही हूँ।'

'क्यों?'

'किसी के इन्तजार में।'

'वह भाग्यवान आखिर है कौन?'

'अभी-अभी तो सामने खड़ा था, आपने देखा नहीं क्या?'

'नहीं तो!'

'तो रहने दीजिये, आप के ही साथ चली चलूँ। कोई एतराज तो नहीं है न?'

'मेरी ओर से भला एतराज क्या हो सकता है। मगर आपकी बातों में रहस्य-सा छिपा लग रहा है…'

'उसे छुपा ही रहने दीजिये तो अच्छा है।'

हम दोनों चल पड़े।

मीलों चलने के बाद एक पुल पार करके चन्द्रापुरी आ गये।

लकड़ी का पुल मन्दाकिनी की क्षीण धारा के ऊपर से चला गया है। चलते समय हिलता रहता है।

चन्द्रापुरी के कई मील इधर से ही हिमाच्छादित गिरि-शिखर दिखाई पड़ रहा था, उसपर सूर्य की किरणें फैलकर तरल स्वर्ण-सी दमक रही थीं।

पुल पार करके थोड़ी दूर चलते ही बस्ती शुरू हो जाती है। चट्टी के मकानों को व्यापारियों ने बनवाया है। वे दूकान लगाकर यात्रियों के लिए बैठे रहते हैं।

पैसे वे आपसे किराये के रूप में नहीं लेंगे। जिसके यहाँ टिकेंगे उसी की दूकान से आपको सामान खरीदना पड़ेगा। और एक के दाम चार लेने के कारण, घर का किराया तो क्या, घर का दाम ही वसूल कर लेते हैं एक ही सीजन में। फिर भी यात्रियों को यह अखरते हुए भी नहीं अखरता।

'बाबूजी।'

एक चट्टी के छज्जे पर से झाँक रहा था जंगली, हमें देखते ही उसने बुलाया—'हमलोग यहीं हैं।'

मैं रुक गया। सुशीला को उतार कर डाण्डीवाले, कुलियों के कटरे की ओर चल दिये। ऊपर आकर देखा, चटाई के उपर कम्बल बिछाकर जमे हुए हैं सुबीर आदि। सामने पाँच प्याली चाय रखी हुई थी। लग रहा था अभी-अभी जमे हैं।

'बैठिये।' सिगरेट की राख झाड़ते हुए विनय ने मेरे कम्बल की

ओर इशारा किया, जिसे जंगली ने बिछा दिया था। फिर दो कप चाय लाने के लिए कह दिया।

सब बातें कर रहे थे। चर्चा चली गुप्तकाशी को लेकर।

शिवनारायन ने कहा—'जगह बड़ी खतरनाक है। सुनने की देर थी कि सबके होश फाख्ता हो गये!

'शिबू का कहना अगर सच है तो वहाँ हम नहीं रुकेंगे।' बंशीधर ने कहा, 'खतरे का सामना करने की इच्छा मुझमें कत्तई नहीं है।'

'वहाँ न ठहरना ही ठीक रहेगा।' कुछ देर तक सोचकर नरेन ने कहा, 'सुना है वहाँ साँप बहुत हैं।'

'और उनमें डँसने की बुरी आदतें भी हैं' मुस्कराते हुए विनय ने कहा, 'फिर साँप से भी खतरनाक हैं वहाँ के पण्डे। दाहिना हाथ जनेऊ पर रखते हैं और बाँयाँ हाथ यजमान के पॉकेट में। मजा यह है कि पकड़े जाने पर छुरा निकाल लेते हैं।'

मैं डर गया, क्योंकि विनय का मौसा कई बार केदार-बद्री आ चुके थे, सो गुप्तकाशी के बारे में खबर वह नहीं रखेगा तो क्या मैं रखूँगा?'

सुबीर ने कहा—'गुप्त काशी में काफी सेव मिलते हैं। सुना है रास्ते के दोनों ओर लगे रहते हैं, जितना खुशी हो तोड़ो और जेब में भर लो, बोलने वाला कोई नहीं। अंगूर तीन आना सेर और नारियल तो सरायवाले फोकट में ही दे देते हैं।'

यह सुनकर सबने ठीक किया कि वहाँ टिकना ही होगा, चाहे साँप रहे या साँप का बाप।

शिवनारायण और नरेन बाहर चले गये।

वहाँ रहने की चर्चा चलते ही मैंने कहा—'अब अकेले-अकेले न चलकर शिबू के साथ चल जाय तो कैसा रहेगा?'

'नहीं, यह नहीं हो सकता।' सुबीर ने सिर हिलाया—'तब साले हमें डरपोक समझेंगे। हम अलग जायेंगे, हो सका तो रहेंगे भी अलग-अलग।'

सुबीर की जिद्द देखकर मैं हताश हो गया। उससे जिस दिन परिचय हुआ था, उस दिन वह कुछ डरपोक-सा लग रहा था। हैवरसैक से टाफी निकालकर देते हुए सबको मैं गुप्तकाशी की विपत्तियों के बारे में सचेत करने लगा। विनय को वहाँ न ठहरने के लिए कहते ही उसने कहा—'नहीं, यह नहीं हो सकता, गुप्तकाशी में मेरे मौसा का पण्डा रहता है, उससे मिलना ही होगा।

विनय की बात सुनकर मैं चुप हो गया। ठण्डी चाय की प्याली उठाकर चुस्की लेने लगा। तभी जोर-जोर से बातें करते हुए, शिबू और नरेन आये, उसके साथ थे सोहनजी और मिसेज सक्सेना।

बैठे-बैठे जी ऊब गया।

जंगली, मिसेज सक्सेना और शिवनारायण एक कोने में चुल्हा बना कर खाना पकाने की कोशिश कर रहे थे। सुशीला कोई किताब पढ़ रही थी और सुबीर आदि गप्प लड़ा रहे थे। मैं टहलने के लिए निकल पड़ा।

गोधूलि बेला।

दक्षिण से उत्तर की ओर बिछी हुई पहाड़ियों के चरण धोते हुए बहनेवाली धारा में सूरज की स्वर्णिम किरणें झिलमिला रही थीं।

उच्छल नदी की धाराओं में प्राण प्राचुर्य है और है गम्भीरतम आवेदन। हरिद्वार या काशी के गंगा तट पर हैं यात्रियों का कलरव और यहाँ है तरंगों का मृदु कल्लोल!

मैं अकेला बैठा था। किनारे मछलियाँ तैर रही थीं। मैं उन्हें गोलियाँ दे रहा था, और वे झुण्ड में जमा हो रही थीं। निशंक मछलियाँ किनारे खेल रही थीं, किन्तु वे बंगाल या दूसरे किसी प्रांत में होतीं, तो अभी खेलने के बजाय किसी निपुण रसोइया के हाथ पककर डाइनिंग टेबुलपर होतीं।

नदी वक्ष पर मैं सूर्यास्त देखने लगा।

जैसे किसी काले दैत्य ने राजकुमारी के सीने में एक छुरा भोंक दिया हो और जख्म से खून का स्रोत्र बहने लगा। खून की नदी टेढ़े-मेढ़े रास्ते से बहती हुई बिन्दु-केन्द्र में जा मिली!

इधर-उधर घूम घामकर जब लौटा तो देखा, सुबीर ने विनय को एक सवाल दिया है, एक कील की कीमत अगर दो सौ पन्द्रह रुपये तेरह आने एक पाई हो तो ब्लैक मार्केट में एक साइकिल, एक ट्राइ साइकिल और तीन हैंडिल का दाम क्या होगा। उत्तर नये पैसे में देना है। विनय ने साइकिल, ट्राइ साइकिल और हैंडिल का दाम पूछा। मगर सुबीर कहने लगा—'वह मैं भला क्यों बताऊँ? मैं क्या साइकिल का हैंडिल बेचता हूँ?'

इसी पर दोनों लड़ रहे थे।

मैंने पूछा—'तुम लोग क्या सचमुच गुप्तकाशी में टिक रहे हो?'

'जरूर' विनय ने कहा—'हम सुबीर के साथ टिक रहे हैं।'

'अच्छा!'

'हाँ।'

'तो यहाँ से रस्सी ले जा रहे हो या नहीं?'

'क्यों रस्सी क्या होगी?'

'साँप काटने पर बाँधोगे किससे?'

'ओह, यह बात?' सुबीर ने मुस्कराते हुए कहा, 'हमलोगों ने दूसरा

तरीका खोज निकाला है। बाँधने के लिए साले साँप ही का उपयोग किया जायगा।'

रात बीत गयी।

सुबह होते ही चलना शुरू हुआ।

चलते-चलते सुवीर कहने लगा, 'गुप्त काशी में अगर तुम्हें डर लगे तो मेरे साथ रहना।'

सुनकर सुशीला मुस्करायी, मैं झेंप गया।

पहाड़ियों पर से ऊपर चढ़ते-चढ़ते गुप्तकाशी दिखाई पड़ने लगी। पहाड़ पर बसी हुई छोटी-सी बस्ती, जितनी ही संकुचित उतनी ही गन्दी और भोंड़ी। हम जितना आगे बढ़ने लगे, गुप्तकाशी उतनी ही स्पष्ट होने लगी। साथ ही साथ पैरों के जोड़ जैसे अलग होने लगे।

हम सब लाठी सँभाले चारो तरफ देखते-देखते चल रहे थे, ताकि किसी साँप वाँप पर पैर न पड़े। पर कहीं केंचुल भी दिखाई नहीं पड़ा। मेरे मन में कुछ साहस आया।

गुप्तकाशी के आगे ही एक पहाड़ी चढ़ाई थी। वहाँ कई घोड़ेवाले खड़े थे। यहाँ से ऊपर चढ़ा देगा, एक रुपया सवारी। विनय को घोड़ा चाहिये था, उसने कहा—'देख प्यारे, रुपया तो मेरे बापने भी नहीं दिया, अगर जाना है तो साढ़े दस आना ले लेना।'

'नहीं सेठ, यह डबल लाश···जरा आप ही समझिये।'

विनय बिगड़ गया, मगर सबने मना लिया। थोड़ी देर तक बातचीत के बाद घोड़ावाला भी तैयार हो गया और यह तय हुआ कि बारह आने तीन पैसे दिये जायँगे।

गुप्तकाशी पहुँचकर देखा, टिकने के लिए हमलोग जिन कारणों से डर रहे थे, रास्ते भर बहस कर रहे थे, वह सब बेकार था!

साँप के बारे में पूछने पर पता चला कि कई सालों से यहाँ किसी को साँप काटते नहीं सुना गया और सेव ? सेव अंगूर तो सपने में ही देखा जा सकता है। हाँ, सामानों में सूखा नारियल अवश्य मिलता है, मगर यहाँ एक की कीमत जो है, उससे बनारस में एक दर्जन नारियल खरीदा जा सकता है।

गुप्तकाशी पहुँचते न पहुँचते ही मक्खियों की तरह पण्डों ने घेर लिया। उनकी बातों से मेरा दिमाग ठण्डा हो गया।

आप कहाँ रहते हैं ? किस गाँव में ? क्या करते हैं ? जिला क्या है ? पिताजी का शुभ नाम ? आपके वंश का कोई इधर आया था ? नहीं, तो आप ही वंश के प्रथम भाग्यवान हैं, जिनके प्रति बाबाकी कृपा हुई है। वंश के नहीं सही, परिचितों में से ? उनमें भी कोई नहीं आया ? अच्छी तरह याद कीजिये ?'

पण्डों से किसी तरह पिण्ड छुड़ाया।

एक पेड़ के नीचे बैठे-बैठे मैंने और विनय ने सिगरेट सुलगायी। विनय रह-रहकर अंगरेजी, बंगला और हिन्दी में सबको गंदी गाली दे रहा था। 'खलीफा' लोग हम दोनों को सामान के पास बैठाकर खिसक गये हैं, चक्कर काटने के लिए।

विनय ने शिकायत की कि सब उसके मोटापे का नाजायज फायदा उठा रहे हैं।

सुवीर को उसके मौसा का पण्डा बीच ही में पकड़ ले गया था। सोहनजी कहीं नहाने गये थे। बाकी बंशीधर, शिवनारायण और नरेन एक दूसरे को खोजने के लिए निकले हुए थे।

बात-बात में काफी समय बीत गया, फिर भी किसी को न आते देख विनय के आग्रह के कारण मैं उसे जंगली की कहानी सुना रहा था।

दिगन्त में जैसे जमीन आसमान को मिलते देखा जाता है वैसे ही हम ऋषिकेश को, हिमालय और समतल के मिलनविन्दु के रूप में देखते हैं। पहाड़ी लोग दूर-दूर से वहाँ आ गिरे हैं।

मन में रंगीन आशा लेकर न जाने कितनी पहाड़ियों को पार करके एक दिन जंगली यहाँ आ पहुँचा। आया था थोड़े ही दिनों के लिए, पर उन पहाड़ियों को लाँघकर वह लौट न सका, जहाँ किसी की तरसती हुई आँखें उनकी राह देख रही थीं। मैदान से आनेवालों की खबर जिसके सीने में धड़कन पैदा कर देती थी—शायद उसके हाथ उसने कोई खबर भेजा हो।

वह बेचैन थी। पर दिल की धड़कनों को छिपाकर रास्ते की ओर निगाह बिछा कर बैठी रहती थी।

बीबी की याद आते ही जंगली के दिल में हाहाकार छा जाती—आँखों के आँसू गंगा की धारा से मिलकर एकाकार हो जाती थी। हर बार की तरह वह फिर सोचता—वह जायगा और जरूर जायगा। इस साल नहीं तो अगले साल, उसे कौन रोकेगा? वह लौटेगा—जरूर लौटेगा सपनों से घिरी अपनी कुटिया में, मगर वह कभी लौट न सका। उसके अरमान धूल में मिल गये। कई साल पहले जब मैं ऋषिकेश आया तो वहाँ के धूल में मुझे यह मोती मिला।

आशा छोड़कर हम दोनों एक दूसरे का मुंह ताक रहे थे कि, सोहनजी आदि नहाकर आ गये।

'आ गये?'

'हाँ, जाइये आप लोग भी नहा धोकर गुप्तदान कर आइये?'

'गुप्तदान!' मैंने तौलिया निकालते हुए पूछा—'यह भला कौन-सी बला है?'

'कुंडकी ओर आइये, पता लग जायगा।'

'अच्छा' हम दोनों निकल पड़े।

गुप्तदान! अजीब बात है! मैंने मन ही मन दुहराया।

दान ऐसी एक चीज है जो कि हारून-अल-रसीद, हरिश्चन्द्र या कर्ण के जमाने में गुप्त न रही। गुप्त रहते तो भला वे दानबीर कैसे कहलाते?

मेरे खयाल में, दान बिना लोगों पर प्रकट किये करने में संतोष कहाँ? दान करने वाले मुझसे सहमत हैं। समाचार पत्रों के रिलीफ फंड कालम इसीसे छापने पड़ते हैं। प्रकाश में ही जिसकी स्वाभाविकता है उसे गुप्त कोठरी में बन्द रखने में उसकी गति रुद्ध हो जाती है। गुप्तदान लेनेवाले पण्डे का क्या अनुभव है कौन जाने?

गंगा-जमुना की धाराओं से आपूरित कुण्ड में नहाकर उठते ही देखा, कि एक पण्डा एक बुढ़िया को मन्त्र पढ़ा रहा है। वह गुप्तदान देने का संकल्प कर रही थी। नारियल के बीच दान की रकम छिपी हुई है। पण्डा उत्साह से मन्त्र पढ़ा रहा था। चलो एक मुर्गी तो फँसी!

मन्त्र पढ़ते-पढ़ते बुढ़िया ने पूर्वजों को स्मरण करने के लिए आँखें बन्द कर लीं। पण्डा ने तिरछी नजर से उसकी ओर देखा, जल्दी यह आँखें खुलने की नहीं, यह अभी शायद अपने पूर्वजों के पास जाने का टिकट लेने से पहले उनसे मार्ग पूछ रही होगी।

पण्डे ने झट नारियल की ओर हाथ बढ़ाया।

नारियल चाकू से एक डेढ़ इंच काटकर यानी अपने मन मुताबिक दान देता है, जिसे पण्डा घर में जाकर देखता है। यही है गुप्त दान। मगर आदम हौवा ही जब उत्सुकता को निभाये बिना न रह सके तो पंडा बेचारे का क्या दोष? बुढ़िया को आँख मूँदते देख उसने फाँक उठाया,

फिर गुस्से से उबल पड़ा। नारियल फेंक कर उठ खड़ा हुआ, ससुरी उससे भी बढ़कर निकली।

विनय देख रहा था, वह जोर से हँस पड़ा। फिर भागते हुए पण्डे की ओर देख वह कहने लगा—'भई पंडाजी, अपना नारियल तो लेते जाओ।'

६

शाम तक गौरीकुण्ड पहुँचे।

रात को जब सब सो गये, तब एक मोमबत्ती जलाकर डायरी लिखने बैठा गया।

गुप्तकाशी छोड़ने के बाद त्रियुगीनारायण पड़ता है, पर एकदम रास्ते पर नहीं, तीन मील चढ़ाई करनी पड़ती है। इसीलिए वहाँ जाना नहीं हुआ। फिर मिसेज सक्सेना ने कहा—'बेकार तीन मील ऊपर जाकर होगा ही क्या ?'

उनका कहना ठीक था, इसीलिए मान लिया गया। फिर 'हर-मैजिस्टीज' की गवर्मेण्ट में और जो कुछ भी रहे, लीडर आफ दी अपोजिशन नहीं है !

फिर वहाँ भला है ही क्या ! उस जगह का महत्व केवल यही है कि, वहाँ पर पार्वती की शादी हुई थी। पुराने ख्याल की स्त्रियाँ उस स्थान का दर्शन कर सदा-सुहागिन रहने की कामना करती हैं और उस यज्ञ की

देखती हैं जो हर पार्वती की शादी के समय जलाया गया था, और आज तक जल रहा है, शायद कुछ दिन और जलता रहेगा !

त्रियुगीनारायण में बहुत कम लोग जाते हैं, क्योंकि हर पार्वती की शादी स्टाइल की दृष्टि से पुराना पड़ गया है। जमाना आया है कोर्टशिप और सिविल मैरेज का। इस समय तपस्विनी पार्वती की पतिभक्ति तथा अग्निसाक्षि उन्हें उत्साहित नहीं करती। वे याद दिलाती हैं उस पराजय के इतिहास का, स्वाधीन स्त्रियाँ जिसे मिटाने जा रही हैं।

प्राग ऐतिहासिक युग !

भारत खण्ड में उस समय स्त्रियों का प्राधान्य था। अर्द्धसभ्य मनुष्य विचरण करते थे—इस खण्ड पर। पुरुष स्त्रियों के अधीन थे।

न जाने कैसे एक दिन पुरुषों का सुप्त पौरुष सजग हो उठा। गुप्त रूप से शक्ति संग्रह करने लगे, स्त्रियों के अत्याचार से छुटकारा पाने के लिए।

अस्त्र लेकर पुरुष और नारी-शक्ति परीक्षा में उतर पड़े। नारियों की हार हुई। पुरुष की लाठी ने उनका सिर फोड़ दिया, खून से माँग लाल हो उठी। पुरुष उन्हें अपने अधीन ले आये। पुरुष आज भी अपराजित रह गया और अपने विजय के प्रतीक के रूप में स्त्रियों की माँग में सिंदूर भरता आया है···

हमलोग जहाँ टिके थे, उसी के सामने काफी ठण्डे पानी का एक कुण्ड था। गौरीकुण्ड, गरम पानी का कुण्ड है और यह कुण्ड उसी रास्ते पर ही पड़ता है।

कल शाम को वहाँ एक पंडा बैठा देखा था। वह सबसे कह रहा था कि वही असली गौरीकुण्ड है और गौरीकुण्ड की ओर दिखाते हुए कह रहा था कि, वह तो तप्त कुंड है सो पहले गौरीकुंड में नहाकर तप्तकुंड में नहाना चाहिये। भई, नहाओ और दक्षिणा दो।

सुबह उठकर देखा—अभी भी वह लोगों को बहकाकर उन्हें ठंडे पानी में डुबकी लगवा रहा है। फिर बेचारे यात्री काँपते-काँपते गौरीकुंड की ओर भाग रहे हैं।

जब कुछ पैसे हो गये तब वह पण्डा सामनेवाली चाय की दूकान पर आ गया और दो आना पैसा देकर जल्दी से एक कप चायदेने को कहा।

मैं इतनी देर तक कम्बल ओढ़े बैठा था, मैंने हँसते हुए कम्बल रख दिया फिर ब्रश तौलिया आदि लेकर गौरीकुण्ड की ओर चल पड़ा।

नहा-धोकर चलना शुरू किया। रास्ते में ही दूध-चाय पी लिया।

यहाँ से सात मील सीधी चढ़ाई। फिर केदार का दर्शन होगा।

यह वही पाषाण राज्य है, जहाँ पड़ा था पांडवों का पहला पदचिह्न! महाकाल ने इस चिह्न को मिटा दिया था, पर उसका पुनरुद्धार किया शंकराचार्य ने। उन्होंने लुप्तप्राय पदचिह्नों को फिर से अंकित किया।

वेदमन्त्र को भूलनेवाले फिर से अनुसरण करने लगे उन चिह्नों को। धीरे-धीरे वह चिह्न बदल गया पथ-रेखा में। मनुष्य की उत्सुकता इस दुर्गम पथ में भी ले आयी विज्ञान को। पथ कुछ सुगम हुआ। फिर दिखाई पड़ने लगा काफिला।

यात्रियों की संख्या बढ़ने के साथ ही साथ आध्यात्मिक आकुलता गौण होने लगी। दुर्गम यात्रा का रोमांस ही मुख्य हुआ। देखते-देखते

यह फैशन में बदल गया। कभी-कभी इन काफिलों को देख मैं सोचता हूँ, यह शंकराचार्य के स्वप्न की सार्थकता है या स्वप्न की समाधि ?

बर्फीली चोटियाँ, जो दूर से धूमिल-सी लग रही थीं अब साफ-साफ नजर आ रही थीं। कभी-कभी पहाड़ियों से उतरती हुई नदियाँ भी दिखाई पड़ जाती थीं।

डंडी के सहारे हमलोग बढ़ रहे थे, केदार की ओर।

पैर में चलने की शक्ति नहीं थी। जी चाहता था यहीं बैठ जाऊँ और रास्ते पर जमे हुए बरफ को लेकर खेलूँ। पर मन इजाजत नहीं दे रहा था। रह-रहकर सोच रहा था, बढ़े चलो—बढ़ते चलो।

मैं हूँ एक राही, यायावर। राह ही है मेरा साथी। मेरे जीवन का सुख विकसित होता है राह को घेर कर। यात्रा की सूचना का पता नहीं है, न परिसमाप्ति के बारे में ही कुछ जानता हूँ। मैंने केवल चलना ही सीखा है।

मैं हूँ पथिक, गति है मेरा धर्म, रुकना पाप है मेरे लिए। इसीलिए आकाश के माँग में सिंदूर भरते हुए सात घोड़े के रथ पर सवार होकर सूर्यदेव जब यात्रा शुरू करते हैं, और इधर मेरी यात्रा उससे भी पहले शुरू होती है, चलते-चलते भेंट होता है रास्ते में।

दोपहर में ईर्ष्यातुर अग्निदग्ध भास्कर जब चारो ओर शुष्कता भर देते हैं, चातक का गला चीरकर जब जाग उठता है पिपासु हृदय का करुण आर्तनाद, तब भी मैं कठिन धरित्री पर कदम रखते हुए आगे बढ़ा चलता हूँ, सूर्यस्नान से मेरी अग्नि शुद्ध होती है।

भयंकर रात के बाद कभी आती है ज्योत्स्नास्नात मोहमयी रजनी। राह पर चाँदनी की चादर बिछ जाती है। मेरी गति उस समय और भी ज्यादा हो जाती है। फिर दुर्योगमयी रात्रि में भी चलता हूँ ठीक उसी तरह।

मेरे जीवन में बसन्त नहीं आया, इसीलिए शीत की भी अनुभूति नहीं है। इस चलायमान जीवन में 'जनवरी' को जान न सका, सो 'दिसम्बर' मेरे लिए अनजान ही रह गया।।

दिगंत की ओर धायमान नक्षत्र की तरह मैं अविराम चलता हूँ। कहाँ जाना है, यह पता नहीं। पर इतना जानता हूँ, यहाँ नहीं, कहीं दूर बहुत दूर चलना है....

मैं सुशीला की डांडी के साथ-साथ चल रहा था।

बात-बात पर डाण्डीवाले केदार-बद्री की कहानी सुना रहे थे।

लोगों का कहना है कि केदार और बद्रीनारायण का मन्दिर एक ही पहाड़ पर था। एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर का फासला भी ज्यादा नहीं था। एक ही पुजारी दोनों मन्दिरों में पूजा करते थे।

पुजारी भक्ति में पागल था।

देवता एक दिन भक्त की भक्ति की परीक्षा लेने के लिए उत्सुक हुए। उन्होंने इस निष्फला देश में एक अमृत-सा फल उगाया। फल हाथ में लिए पुजारी मन्दिर की ओर बढ़ा, देवता का फल उन्हीं को चढ़ा देगा। पर निष्फला देश का पुजारी फल के सुगन्ध से पागल-सा हो उठा, देवता के फल में उसने दाँत लगा दिये।

मन्दिरवासी ने लोभ को भक्ति पर विजय पाते देखा।

उस आदिम पुजारी के प्रथम पाप के साथ ही साथ बिजली कड़क उठी। दो मन्दिरों के बीच की दीवार बन्द हो गयी, हमेशा के लिए।

तुम जब दो पग लोभ मोह छोड़कर चल नहीं सकते, तो ठीक है, कष्ट की कसौटी में अपने को रगड़ के तब मेरे पास आओ।

डांडीवाले रुके।

मैं सोच रहा था, इस कहानी के फलके साथ एक अदृश्य धागे से

बँधी हुई हैं आजतक के फल-लोभियों की कहानियाँ। यह आदिकाल से चला आ रहा है। फल जिसके लिए है, न कभी उसके हाथ पहुँचता है, न पहुँचेगा और न पहुँच रहा है।

सीता ने पवनसुत के हाथ आम भेजा था, राम लक्ष्मण के लिए। पर फल के माधुर्य ने पवनसुत हनुमान को भी दुर्बल कर दिया। राम का जमाना गया, मगर फल-लोभी मरे नहीं, आज भी जिंदा हैं। लोभ अजेय ही रह गया, रामराज्य से स्व-राज्य तक।

१८५७ में विद्रोही ब्राह्मण जिस स्वाधीनता का अंकुर बो गये, अनगिने वीरों का आत्मदान और डबल रोटी की तरह बंगाल और पंजाब के अर्द्धांश को जिस फल की कीमत चुकानी पड़ी, उसे जनता के हाथ तक पहुँचाने के लिए जो ठेकेदार रखे गये, वे आम चाटने में हनुमान से भी बढ़कर निकले।

पर सीजर पत्नी का चरित्र एवं शासकों की इमानदारी आलोचना से परे है।

लड़खड़ाते कदमों से ऊपर आ पहुँचे। दूर से दीख रहा था केदारनाथ के मन्दिर का शिखर।

जो दूर से मायवी-सा लग रहा था, नग्न दोपहर में उसने मुझे निराश कर दिया। रास्ता तय कर लेने के बाद यात्री खुश होता है, मगर मुझे ऐसा लगा, जैसे कि मंजिल कुछ दूरपर होती तो शायद खुश होता।

खरस्त्रोता गंगा पर छोटा-सा एक पुल पार करने के बाद केदारनाथ की बस्तियाँ जहाँ से शुरू होती हैं, वहाँ हमलोग मिले। हमलोगों को देख पण्डों ने आ घेरा। मैं कुछ बोलने जा रहा था कि सुबीर ने मुझे रोक दिया, कहा—'रूल आफ दि गेम मानना चाहिये।'

मैंने देखा उसका कहना ठीक है। शहर में अगर आप टैक्सी के नीचे आ जायँ तो शायद टैक्सीवाले को फाइन होगा, मगर यदि आप वहाँ बैलगाड़ी के नीचे आ जायँ, तो आप शहर में रहने के काबिल नहीं, जाहिल समझ कर शहर से निकाल दिये जायँगे !

यह रिवाज है और रिवाज को मानना चाहिये।

तरुण पण्डा सीटी में फिल्मी गाना बजाते हुए हमलोगों को अपने डेरे ले जा रहा था।

एक लम्बे कमरे में हमलोगों को बैठाकर कई कम्बल दे गया। बाहर कड़ी धूप थी, साथ ही साथ ठण्ढा इतना अधिक था कि हड्डियों को कँपकँपा रहा था।

ठीक हुआ कि गंगा में नहा-धोकर जल्दी से केदारजी का दर्शन किया जायगा, नहीं तो दरवाजा बन्द हो जायगा। फिर मुझे और विनय को छोड़कर पण्डाजी बाकी सबको क्रिया-कर्म करायेंगे।

विनय ने हँसते हुए कहा—'माँ को तो देखा ही नहीं, बाप का क्रिया-कर्म मैं अपने हाथों से कर चुका हूँ। अब बाकी रह गया अपना, मगर उसके लिए जल्दी क्या है ?'

'तुम इतना मस्त कैसे रहते हो यार ?' सिगरेट सुलगाते हुए मैंने उससे पूछा।

'मोटापा का अभिशाप समझो !' उसने हँसते हुए कहा—'जानते हो, मैं न लड़ सकता हूँ और न भाग ही, इसीलिए मुस्कराना मेरे लिए जरूरी है ?'

उसकी बातों को सुन सब हँस पड़े। मगर मुझे हँसी नहीं आई। कई दिन के परिचय में ऐसा लगा जैसे विनय का जीवन सर्कस की एक 'क्लाउन' की तरह है। उसके बातों को सुन सब हँसते हैं। मगर मुस्कराहट में छिपे

आँसू को कोई नहीं देखता। शायद इसीलिए विनय जैसे लोग युग-युग में कहते आये हैं, 'आइ केयार फॉर नो मैन, नो मैन केयर्स फ़ॉर मी।'

सब नहाने चले गये, रह गया मैं और विनय। इस ठंडक में अगर गंगा-स्नान करना पड़े तो गंगा-प्राप्ति में देर न लगेगी, सो हम दोनों फ्लश खेलने में लग गये। तभी पंडे का लड़का आया, 'भाई साहब...'

'कहो भई?' मैंने पूछा—'क्या बात है?'

'भाई साहब, रेकार्ड सुनियेगा? फिल्मी रेकार्ड...'

'रेकार्ड!'

'हाँ भाई साहब, मैं जरा फिल्मी चीज का शौकीन हूँ।' फिर शर्माकर उसने कहा—'जी पंडागिरी मुझे अच्छी नहीं लगती, मगर क्या करूँ पिता जी मानते ही नहीं।...ले आऊँ रेकार्ड?'

'लाओ, इसमें पूछने की क्या बात है?'

उसके चले जाने के बाद विनय ने कहा—'इसे लॉजिक में शायद लॉ आफ कण्ट्राडिक्शन कहते हैं। तुमने वकील के लड़के को डाक्टर होते देखा होगा, डाक्टर के लड़के को कन्ट्राक्टर, मगर पंडा के लड़के को पंडागिरी छोड़कर अन्य पेशा अपनाते नहीं देखा होगा। इसका कारण यह नहीं कि उनमें दूसरी वृत्ति की ओर झुकाव नहीं होता, बल्कि बात यह है कि, उनकी सभी वृत्तियों का गला घोट दिया जाता है; फिर पंडा का लड़का पंडा बन जाता है।'

वह ग्रामोफोन और रेकार्ड लेकर लौट आया।

बड़े चाव से उसने अपने घिसे हुए रेकार्डों को सुनाया। हमलोगों के कहने पर खुद गाया भी। फिर एकाएक रेकार्ड और ग्रामोफोन उठा कर उठ खड़ा हुआ, फुसफुसाकर कहा—'देखिये, बाबूजी से कहियेगा नहीं, समझे?'

उसके चले जाने के बाद अपने डायरी में मैंने एक पद लिखा—'एक कलाकार की अपमृत्यु !'

हमलोग केदार के मंदिर के सामने आ गये।

भीड़ काफी थी। एक पंडा के पास नाम पता आदि लिखवाने के बाद कहीं अंदर जाने की बारी आती थी। देर तक रुकने के बाद हम लोगों की बारी आयी।

मेरे आगे था एक अंधा। एक साथी उसे ले आया था। वह यहाँ कुछ देखने नहीं आया, आया है अंध-देवता से दृष्टि की भिक्षा माँगने!

हिमशीतल मंदिर के अंदर जाकर केदार को देखा, आकारहीन काले रंग के एक पत्थर पर बस्त्रदान और घृतलेपन चल रहा था। कुछ लोग परिक्रमा कर रहे थे।

पंडाजी ने अ-निर्वाण दीप दिखाया, यह वही दीप है, जो केदार का दरवाजा बन्द करते समय जैसा जलते देखा जाता है वैसा ही जलता हुआ मिलता है, नौ महीने के बाद दरवाजा खोलते समय भी!

केदार के पंडो की करतूतें रह-रहकर याद दिला रही थी मारवाड़ी व्यापारियों की। मेरे साथ के सब आँख मूँदकर बड़े भक्ति से पूजा कर रहे थे। विकलांग सुशीला के ओंठ बार-बार काँप रहे थे।

मंदिर से निकलकर मैं सीढ़ी के पास आया।

जूता पहनने जा रहा था कि एकाएक रंग फीका पड़ा हुआ एक टिन के प्लेट पर असुन्दर अक्षरों से लिखा हुआ 'शंकराचार्य की समाधि' को देख मैं थम गया। पाँव रुक गये। मंदिर से दो कदम की उस पहाड़ी रास्ते के दोनों ओर बड़े-बड़े पत्थर रख दिये गये हैं। उसी रास्ते से बढ़कर

एक समाधि देखा, जिसमें सोया हुआ था 'का तव कान्ता, कस्तेव पुत्र' वाणी सुनानेवाले युगपुरुष शंकराचार्य !

उल्का की तरह भभककर खाक होनेवाले शंकर ने ठीक ही कहा था, दुनियाँ विचित्र है !

दूसरे की कृति को अपना कहकर चलाते देखा बहुतों को, मगर उन्हें अपनी कृति दूसरे का कहकर चलाना पड़ा। केदारनाथ को चुंबक बनाने के लिए पांडवों को उसका निर्माणकर्त्ता कहना उतना ही जरूरी था, जितना कि किसी पत्रिका को चलाने के लिए फाइनेन्स का नाम सम्पादक में डालना ! उन्होंने वही किया जो करना चाहिए था, जो देश ग्रहण कर सकता था।

उन्होंने लोगों में देशात्मबोध लाने के लिए उन्हें आध्यात्मिकता का शर्करामिश्रित कुनैन दिया। वे जानते थे कि धर्म के नाम के बिना भारत के लोग घर से निकलना नहीं चाहेंगे, पर धर्म के नाम पर नरक तक घूमने में वे पीछे न हटेंगे। यह भारतीयों की आध्यात्मिक दृढ़ता नहीं, सस्ते में स्वर्ग प्राप्ति का प्रलोभन है। धर्म से न वे डरते हैं, न उसे मानते हैं—यह उनका संस्कार मात्र है।

उस संस्कार को काम में लाने के लिए शंकराचार्य ने मंदिर प्रतिष्ठित किया। एक नहीं, चार-चार। स्थापना ऐसे स्थानों पर की गयी, जिससे तीर्थयात्री के सामने सम्पूर्ण भारत की एक झाँकी आ जाय। वे अपने देश की स्थिति जान सकें।

पर शंकर का सपना पूरा न हुआ। जगे को जगाया न गया।

शंकराचार्य के चारों धाम में यात्री आ रहे हैं कोल्हू के बैल की तरह। वे उनकी बातों को न समझे और न समझने की कोशिश की। ट्रेजेडी सिर्फ इतना ही नहीं। दुःख तो इस बात का है कि उन्होंने जिस

अमृत बीज को बोया था, उससे अंकुरित विषवृक्ष, आज कालकूट उड़ेल रहा है। समुद्र मंथन से विष और अमृत दोनों ही उठा था। विषपान से शिव हुए थे नीलकंठ। मगर केदार का विष धारण करना नीलकंठ के लिए भी असंभव रहा। धर्म का विष अन्य विष से कुछ ज्यादा है, और इसको उभाड़नेवाले पंडे केवल विप्र ही नहीं, हैं चार सौ बीस भी!

आज समाधिस्थ शंकर के समाधि के पास, मैं शांति कामना के लिए नहीं आया हूँ, आया हूँ शांतिभंग करने के लिए। तरुण युग-प्रवर्तक के अशांत चित्त को और भी अशांत करने के लिए। उनसे कहने आया हूँ, तुममें अगर शक्ति है तो जागो, अपने हाथ से बोये हुए विषवृक्ष को उखाड़कर इतना दूर कहीं फेंक दो जहाँ से वह तुम्हें तंग न कर सके!

७

मैं अकेला बैठा था, सुशीला आ खड़ी हुई, 'क्या कर रहे हो?'

'डबलू० डी० वील्स को जला रहा हूँ।' इधर-उधर बिखरे पड़े सिगरेट के टुकड़ों को दिखाते हुए मैंने कहा।

'मासीजी कह रही थीं, तुम कल ही लौट रहे हो।'

'वैसा ही सोचा था'

'तो क्या निश्चय किया?'

'अभी तक उस विषय पर मैंने विचारा ही नहीं।' थोड़ी देरतक चुप रहने के बाद कहा—'सोहनजी और मिसेज सक्सेना अभी बाहर गये हैं न?'

'हाँ।'

'कहाँ?'

'मैं भला क्या जानूं' फिर मेरे कंधे को झकझोरते हुए कहा—'इतना सिगरेट तुम क्यों पीते हो?'

'तुम्हें एतराज हो तो नहीं पीऊँगा।' सिगरेट का डिब्बा उसके हाथ में देकर कहा—'लो बाहर फेंक दो।'

'उसकी कोई जरूरत नहीं।' डिब्बा लौटाते हुए उसने कहा—'मगर पिताजी के सामने न पीनेसे क्या नहीं चलेगा?'

'चलेगा क्यों नहीं? मगर अपने को कष्ट देकर क्या लाभ?'

'सुशीला को चुप होते देख मैंने फिर कहा—'पिताजी को छोड़ो, अपनी सुनाओ।'

'अच्छा!'

'हाँ आज बड़ी सुन्दर लग रही हो तुम।'

'यह बात है! तो दूसरी ओर मुँह करके बैठो, नहीं तो नजर लग जायगी।' उसने मुस्कुराकर मेरी ओर देखा।

'वैसा ही तो था, मगर चूड़ियों की खनखनाहट भला किसे ध्यानमग्न रहने देती है।'

'तो बाहर क्यों नहीं चले जाते?'

'तुम्हें तकलीफ होगी, सिर्फ इसीलिए नहीं जा रहा हूँ।'

'तोबा! यह मुँह और मसूर की दाल! शीशे में कभी अपना चेहरा देखा है?'

'कभी क्या रोज देखता हूँ। अहा! क्या खूबसूरती पायी है...'

'जनाब आप भूल रहे हैं कि बेवकूफी की भी हद होती है!'

'गलत! बिलकुल गलत। बेवकूफी की हद नहीं होती।' मैं उठ खड़ा हुआ, 'अगर होती तो, प्यार करके घर से भागनेवाले लड़के-लड़की पकड़े जानेपर केवल लड़के को सजा नहीं होती। सिगरेट और पेट्रोल के पवित्र मिलन से आग का जन्म, यह जानते हुए भी लोग 'धूम्रपान मना है' नहीं लिखते। बेवकूफी या लॉ बोलकर कुछ नहीं है, सब है अदर इन लॉ।'

'तो कुछ दिन लॉ भी पढ़े थे क्या?' सुशीला ने पूछा।

'हाँ, एक केस के सिलसिले में मैंने अपने वकील से पूछा, अगर मैं खुद ही क्रास करूँ तो कैसा रहे ?'

'विचार तो प्रशंसनीय है ! बकवास की एक नयी धारा तो आ ही जायगी।'

'उनके इस 'टाक' ने मेरे कलेजे में धक्का मारा, मैंने सोचा अब लॉ ज्वाइन कर लेना ही ठीक होगा।'

'तो तुमने छोड़ क्यों दिया ?'

'जँचा नहीं। देखा यहाँ भी वही नियम है जो सब जगह है। बड़े-बड़े मोनोपोलिस्ट को कालाबाजारी करने के लिए बढ़ावा दो, मगर खोमचेवालों की जनता को ठगने के कारण फाटक में बन्द अवश्य करो, नहीं तो गजब हो जायगा।'

'तो तुम कम्युनिस्ट हो ?'

'नहीं। जो लोग दूसरों से मेहनत करवाकर उचित मजदूरी नहीं देते वैसे ही एक परिवार में जन्म लिया है मैंने। मगर मुझे विश्वास है कि देश के लिए कोई सच्चा काम कर सकते हैं, तो वे हैं कम्युनिस्ट—दूसरे नहीं।'

'छोड़ो यह सब—'प्रसंग बदलने के लिए सुशीला ने मुस्कराते हुए पूछा, अच्छा रंजन, तुमने किसी लड़की से कभी प्यार किया है ?'

'नहीं।'

'भाई वाह ! कई साल तक बी० एच० यू० में पढ़ा और प्यार नहीं किया, यह भला कौन विश्वास करेगा ?

'करना ही ठीक होगा। क्योंकि देअर आर मोर थिंगस इन कालेज लाइफ।'

'आल सो, देर वेयर मोर गर्लस इन वीमेंस कालेज।'

'असली बात क्या है, जानती हो ? मेरे साहित्यिक मित्रों का कहना है

प्रेम में पड़ने पर आदमी बुद्धू नजर आता है। इसलिए आगे बढ़ने से डर गया।'

'बहुत खूब ! तुम व्यंग क्यों नहीं लिखते ?'

'कोशिश तो किया था, पर एक सम्पादक ने कहा—'आप जैसे अगर सटायर लिखने लगें तो सटायर को सटायर क्यों कहा जाय ?'

'तो तुमने क्या कहा ?'

'कहना क्या था, कमबख्त से कहा—'आप जैसे मूर्ख लोग ज्यादा जो हैं।' और उसकी आँखों में झाँककर धीरे से मुस्करा दिया।

'फिर ?' वह जैसे अपने आपमें डूबी हुई थी।

'फिर कभी लिखने की कोशिश ही नहीं की।'

'सुनो—सुशीलाने एक बार मेरी ओर देखकर कहा— 'चलो जरा घूम आयें।'

'कहाँ ?'

'यूँ ही बाहर, दूर कहीं।'

'तो दो मिनट में तय्यार हो लो।'

'तय्यार क्या होना है। मैं तो तय्यार ही हूँ।'

बाहर आकर घूमते-घूमते हम दूर निकल आये।

हमें क्या पता था कि प्रकृति हमारे पदचाप सुन रही थी। षड़यन्त्र रच रही थी हमारे खिलाफ ! हमारे जैसों का आक्रमण प्रतिरोध करने के लिए प्रकृति ने खुद ही हमला कर दिया। हम दोनों उससे बचने के लिए पागलों की तरह इधर-उधर देखने लगे, पर कहीं भी आश्रय दिखाई नहीं पड़ा।

हवा का वेग धीरे-धीरे बढ़ने लगा, सों-सों अवाज करता गुर्राने लगा।

आँधी के साथ ही साथ तुषारपात भी होने लगा। डरी हुई सुशीला ने मुझे अपने हाथों से जकड़ लिया। उसकी वैसाखी छूट गयी।

आँधी और तुषारपात की भयंकरता देख मेरा कलेजा ठंडा होने लगा, बदन का टेम्परेचर जैसे घटने लगा। सुशीला थरथर-थरथर काँप रही थी।

लग रहा था जैसे आँधी जरा जोर से आये तो उड़ जाऊँगा और तुषारपात अगर जारी रहे तो जीवित समाधि होने में देर न लगेगी।

चारों ओर अंधकार छाया हुआ था। प्रकृति की डरावनी रुद्राणी रूप देख, न आगे बढ़ने का ही साहस था न पीछे हटने की हिम्मत। कदम उठाऊँ तो न जाने किस खड्ड में जा गिरूँ और न उठाऊँ तो बरफ चारों ओर से ढँक दे।

सुशीला सूझ-बूझ खो चुकी थी। मैं उसे सहारा देकर किसी तरह से घसीटता ले चला। कब तक ऐसा चलता रहा, पता नहीं। एकाएक एक आदमी मिल गया। हमें देख उसने पूछा—'कौन?'

'मुसाफिर।'

'किस पंडे के यहाँ जाना है?'

मैंने पण्डे का नाम बतलाया। उसने कहा कि हम लोग पास ही आ गये हैं।

'मगर हम लोगों को तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि कहाँ हूँ, क्या है?'

'चलिये, मैं पहुँचा देता हूँ आप लोगोंको—'

'बड़ी कृपा होगी, आपकी।'

'तो तुम आज ही जा रहे हो रंजन?' सोहनजी ने मंदिर आते समय मुझसे पूछा।

'जी हाँ, थोड़ी ही देर में जाने का विचार है।'

'विचार क्या बदल नहीं सकते?'

'शायद नहीं, पर थोड़ा-बहुत रद्दोबदल हो सकता है।

'तो ठीक है, अगर शाम को चलो तो मैं भी चलूँ। सुशीला की तबियत खराब लग रही है।'

'मगर उससे क्या लाभ? आप लोग तो अगस्तमुनी जायेंगे और मैं चलूँगा तुंगनाथ के रास्ते से।'

'कोई बात नहीं, कुछ दूर तो एक साथ चला जायगा।'

'आप चाहें तो शाम को ही चलूँगा।'

'धन्यवाद।'

सोहनजी के चले जाने के थोड़ी देर बाद नरेन आया, 'मैंने कहा साहबजादे, आप यहाँ बैठे-बैठे तारे गिन रहे हैं और मैं आपको चारों ओर खोज रहा हूँ।'

'क्यों?'

'मन्दिर में घुसते न घुसते ही निकल आये, न पूजा किया न कुछ, फिर शाम को आरती तक नहीं देखी, आखिर बात क्या है।'

'यार सब बकवास है।'

'क्या?'

'यही मन्दिर, तीर्थ सब एक-सा है, सब चार सौ बीसों का अड्डा है।

'अरे भाई चुप हो जाओ, कोई सुन लेगा तो गजब हो जायगा।

८

शाम को गौरीकुण्ड तक उतर आये। ऊपर चढ़ने में जितना कष्ट हुआ था, उतरते समय उतना ही आराम। मगर मेरे सपने टूट चुके थे। कल्पनाओं के महल ढह गये थे। क्या यही वह स्वर्गिक स्थान है, जहाँ आकर जीवन धन्य हो जाता है! यहाँ तो जिंदगी का नामोनिशान नहीं, है सिर्फ इन्सानियत की मौत!

भूल मेरी ही थी, पाषाण के सीने में धड़कनें सुनना चाहता था।

दूर से दीये का प्रकाश देखा था, पास आकर अँधेरा भी देख लिया।

एक दो मंजिले वाले भवन में रहने का इन्तजाम किया गया। सोहनजी भी साथ थे, जंगली ने सबका बिस्तर लगा दिया। मैं बरामदे में आ गया।

पश्चिमी देशों में क्लासिफिकेशन होता है दो तरह का, स्मोकिंग और नानस्मोकिंग! मगर भारत में लेडीज और जेन्टलमेन। स्त्री पुरुष की अलग-अलग व्यवस्था। मगर इस रास्ते ने सारी व्यवस्थाएँ उलट-पुलट कर दिया। बाइबिल के 'दी डे आफ जजमेंट' की तरह यहाँ भी एक साथ ही बिताना पड़ता है।

मैंने सिगरेट सुलगायी।

कुण्ड में अनेक स्त्री पुरुष नहा रहे हैं। मैं सोचने लगा, यहाँ जो सब औरतें निर्लज्ज होकर नहा रही हैं, कौन कहेगा कि उनकी लज्जा बचाने के लिए दरवाजे और खिड़कियों में अनगिने मोटे-मोटे पर्दे झूलते हैं या नहीं?

जलती हुई सिगरेट की आग चमड़े को छूने आ रही थी, तभी मिसेज सक्सेना ने पुकारा, 'रंजनजी!'

'कहिए' सिगरेट के टुकड़े को फैंक मैं अन्दर आया, 'मुझे बुला रही हैं आप?'

'जी, बाहर किसका ध्यान कर रहे थे?'

'वह आप नहीं समझेंगी।'

'अच्छा जी!'

'हाँ।'

'तो नाम जपने से ही काम चलेगा या थोड़ा-बहुत खाने वाने की भी जरूरत पड़ेगी?' वे मुस्करायीं।

'यह भी कोई पूछने की बात है? जल्दी से ग्रांड होटल का खाना भेज दीजिये। भूख ऐसी लगी है जैसे पेट में सत्तावन का गदर हो रहा हो।'

सब जब सो गये, तो थके हुए आदमियोंके खर्राटों को कुछ देर तक सुनने के बाद मैंने कम्बल फेंक दिया। टटोलते हुए मोमबत्ती और दियासलाई निकाली। मोमबत्ती जलाकर तकिये के नीचे से डायरी और कलम निकाली। सचमुच 'सीनर्स हैव नो रेस्ट।'

रात काफी बीत चुकी है। मैं डायरी के पन्ने रंगने लगा।

अजीब है यह लड़की, सुशीला। जितना देख रहा हूँ उतना ही

आश्चर्य हो रहा है। शारीरिक विकृति के कारण मनमे भी थोड़ा बहुत विकृति की छाया पड़ चुकी थी। जब कभी वह अकेली मेरे पास रही, उसकी इन्द्रियाँ चंचल हो उठती थीं, मेरे पास आ बैठती तो लगता था, जैसे उन्माद में डूब उतरा रही हो!

फिर तुरन्त ही शिशुवत आचरण करने लगती है। अजीब है, एक ऐसी पहेली, जिसे सुलझाना मेरे लिए दिनों-दिन कठिन होता जा रहा है।

विकलांग सुशीला को देख बार-बार अपने बगीचे के एक चम्पा के पेड़ की याद आती है। इतने दिनों से मैं उसे सींचता आ रहा हूँ, यत्न की कमी नहीं हुई, फिर भी आजतक उसे फूलते-फलते नहीं देखा। दूसरों की नजर में उसका कोई महत्व नहीं था, मगर मैं न जाने क्यों उसका आकर्षण अस्वीकार नहीं कर पाता था।

कलरव करती हुई चिड़ियाएँ जब घोसले की ओर लौटने लगतीं तब मैं अनुभव करता था, उस बाँझ पेड़ का आकर्षण! और सच बताऊँ तो कुछ शान्ति भी मिलती थी।

सुशीला पेड़ नहीं, एक युवती है।

युवती को किसी कसौटी पर विचार नहीं किया जाता, विचार किया जाता है दिल की धड़कनों से। अगर उससे कुछ गलती भी हो तो उसे 'युवती धर्म' कहकर माफ कर दिया जाता है। यह पुरुषोचित दुर्बलता है। फिर एक पुरुष ने जिस नारी का प्यार पाया है, वह प्यार चाहे कितना भी निकृष्ट क्यों न हो, पुरुष उससे घृणा नहीं कर सकता।

गौरीकुण्ड काफी पीछे छूट गया।

हमलोग नाला चट्टी तक आ गये थे।

कल से सोहनजी और हमलोगों की यात्रा अलग-अलग रास्ते से शुरू होगी। वे पुराने रास्ते से अगस्त्यमुनी तक जायँगे, फिर वहाँ से बस मिलेगी पीपल कोठी तक। हमलोगों को चलना है तुंगनाथ के रास्ते से होकर।

सन्ध्या का काला जाल बिछाकर अदृश्य व्याध न जाने कहाँ चला गया। नाला चट्टी का कलरव कुछ शान्त हो आया। नन्हीं-नन्हीं बूंदें बरसते-बरसते पानी एकदम बन्द हो गया। पास ही अखरोट के पेड़पर बैठा हुआ भींगा कौवा भी दीख नहीं रहा था। हिमानी हवा के झोंके से काँपते हुए अखरोट के पत्तों से बूंदें झर रहा था।

जलते हुए लालटेन की रोशनी दुकानों का अस्तित्व बता रही थी। कहीं-कहीं हुक्का लिए दो-चार आदमी बात-चीत कर रहे थे।

हम दो मंजिली दुकान पर टिके हुए थे। अन्दर कच्ची लकड़ी से खाना बनाने के कारण काफी धुआँ भर गया था। मैं एक कम्बल ओढ़-कर बरामदे में खड़ा सामने की बस्ती की ओर देख रहा था। बगल में चुपचाप खड़ी थी सुशीला। सुबह से एक भी बात नहीं हुई थी, शायद अभिमान हो आया हो।

ठण्ढ हड्डियों को भी कँपा रही थी।

दुकान के विपरीत गढ़वालियों का एक छोटा-सा मकान। उसमें रहता है एक छोटा सा परिवार, सुन्दर, और शायद सुखी भी। गढ़-वालियों के दरवाजे-खिड़कियाँ बन्द नहीं की जातीं थी। पहले पल्ला बनवाने की कोई जरूरत नहीं पड़ती थी। मगर जबसे शहर के लोग ऊपर आने लगे तभी से ताला लगाने की जरूरत महसूस हुई।

एक लम्बा-सा कमरा दो भागों में बँटा हुआ था। एक ओर एक

पुरुष और दो युवतियाँ आग में हाथ पैर सेंकते-सेंकते कुछ बातें कर रही थीं। कभी-कभी वे जोर-जोर से हँस भी रहे थे।

बगलवाले हिस्सों में एक औरत अकेली बैठी अपने बच्चे को दूध पिला रही थी और लोरियाँ गुनगुना रही थी।

मूर्तिमती मैडोना को देख, फिडिंग बटल या आया से दूध पिलाने वाली आधुनिक माताओं के प्रति अनायास घृणा होने लगती है। और दैहिक सौन्दर्य-रक्षा के लिए सौन्दर्य के पूर्ण विकास से वंचिता को देख करुणा हो आती है।

पत्थरपर धीरे धीरे चलते-चलते हम मोड़पर आ गये। यहीं से दो राह अलग हो गई है।

'बद्री में मिलोगे न ?' कुछ एकान्त पाकर पूछा सुशीला ने। उसका प्रश्न छोटा था, उत्तर भी खास बड़ा नहीं, फिर भी कोई उत्तर दे न सका उस शोख लड़की को।

'भाई रंजन' न जाने क्या कहना चाहते हुए भी आगे बढ़ गये सोहन जी।

पथरीली सड़कपर लाठी की आवाज लग रही थी जैसे अव्यक्त व्यथा से रो रहा हो। मन में झाँक रही थी दो काली-काली आँखें।

पग-पग पर विरही-विरहिणियों ने बिछुड़ने वालों के यात्रा पथपर इस विश्वास से दृष्टि बिछा दी है कि एक दिन न एक दिन वे मिलेंगे ही। मगर जानेवाले वहाँ लौट न सके, जहाँ दो काली-काली आँखें इन्तजार में राह देख रही हों।

६

नाम रखनेवाले ने प्रकृति से मिलाकर नाम रखा है, जंगल चट्टी। आसपास जंगल तो है ही, व्यवस्था भी जंगल जैसी। चट्टी में दुकान कम और यात्री ज्यादा।

हमने एक दूकानदार की शरण ली, चाहे जो भी हो रात काटने के लिए जगह मिलनी ही चाहिये। जोर देने पर उसने कहा कि पास ही एक भूतहा मकान है, अगर चाहें तो वह शायद मिल सकती है।

'अरे हाँ, यूँ बोलो' मैं उछल पड़ा, मनहूस हो या भूतहा हो सब कुछ चलेगा।'

दूकानदार सुक्खू ने एक लड़के से ताली मँगवाकर मकान खोल दिया।

दिन में व्यवहार होता है और रात को भूतों के लिए छोड़ दिया गया है, मैंने मन ही मन भूतों को धन्यवाद दिया, लोगों को उनके अस्तित्व पर विश्वास है तभी तो यह मुझे मिला, नहीं तो मैं कहाँ जाता?

'जंगली।'

'जी, बाबूजी।'

'तुम खाना बनाओ, मैं अभी आ रहा हूँ।'

'अच्छा।' उसने सिर हिलाया।

मैं टहलता हुआ सुक्खू की दूकान के पास आया।

छोटी-सी दूकान। दूकान के पीछे से चली गयी है एक नाली, नाली के बगल में रखा हुआ था कुछ सामान। बरसात का पानी उसे छल-छल करता नहला रहा था।

दूकान छोटी, पर बिक्री कम नहीं। बहुत लोग उससे सौदा लेते हैं और वह भी मुसाफिरों के लिए सब तैयार रखता है।

शाम से ही हल्की बूँदें पड़ रही थीं, उसके चारों ओर उड़ रहे थे अनगिने फतिंगे।

भीड़ कुछ खाली होने के बाद देखा हाफपैन्ट पहने पीठ पर सामान लादे एक तरुण खड़ा है। जिज्ञासु दृष्टि से सुक्खू ने उसकी ओर देखा, 'क्या चाहिये बाबूजी?'

'एक पैकेट सिगरेट।'

'बहुत अच्छा।' पैकेट उसकी ओर बढ़ाते हुए सुक्खू मुस्कराया, 'लीजिये बाबूजी।'

'अः' सिगरेट सुलगाकर तृप्ति की साँस लिया यात्रीने—'अच्छा भई, यहाँ से कितनी दूर पर चट्टी मिलेगी?'

'डेढ़ मील पर, मगर बाबूजी तकलीफ उठाने की क्या जरूरत? रात किसी तरह यहीं काट दीजिये...'

'साथ के लोग आगे बढ़ गये हैं, वे परेशान होंगे।' पैसा चुकाकर वह चल दिया।

दूर अन्धेरे में टार्च की रोशनी छिप गयी। मगर सुक्खू उसी ओर देख रहा था। किसी आवाज से उसका चिंताजाल टूट गया।

दुकान बन्द करते-करते वह सोचने लगा, रात ज्यादा नहीं हुई है पर लछमिया जरूर लालटेन लेकर दरवाजे के पास आकर उसकी राह देखती होगी।

उसने कड़ी में ताला लगा दिया।

मैं उठ खड़ा हुआ। आकाश बादलों से छाया हुआ था, अब बाहर रहना ठीक नहीं, न जाने कब बरसना शुरू हो जाय।

कोई दुःस्वप्न देख मैं जाग उठा। आर्तनाद कर कहीं बैठा हुआ उल्लू उड़ गया।

निस्तब्ध रात्रि! काले-काले बादलों से आसमान पटा हुआ था। चारों ओर नीरव वातावरण! आनेवाली आँधी का इशारा। पल्लाहीन खिड़की से जितनी दूर तक दिखाई पड़ रहा था, उतनी दूरतक सर्वत्र कालिख पुत गयी थी।

हा हा हा। ठण्डी हवा के झोंके के साथ ही साथ देखा, खिड़की पर एक नग्न नारी मूर्ति। वह आगे आ रही थी, आगे और आगे। मेरा बदन ठण्डा होता गया।

फिर कुछ याद नहीं है।

जब ज्ञान हुआ तो देखा मैं जंगली की गोद में सिर रखकर सोया हुआ हूँ। कड़ी धूप पृथ्वी को नहला रही थी।

मैंने जंगली से सब कहा, मगर उसे विश्वास नहीं हुआ। वह कहने लगा, 'कल आपकी तबीयत खराब थी, कोई सपना देखा होगा।'

सुक्खू ने सब गौर से सुना, फिर कहा—'आपने ठीक ही देखा है? वह औरत थी मुनिया। बिचारी की आत्मा को आज तक शान्ति नहीं मिली।'

कहानी सुनाते-सुनाते सुक्खू दूर तक हमलोगों के साथ आ गया था।

मेरी आँखों के सामने सजीव हो रही थी उसकी कहानी···

हल्के-फुल्के धुएँ की-सी कुहासा भरी रात। उस मकान में टिकनेवाले मुसाफिर दरवाजे पर अलसाये हुए बीन बजा रहे थे। सुर में आकुल हृदय का रोना था।

विषैला बीन घर के बाहर खींच लाया था लच्छू की बीबी मुनिया को। मन्त्रमुग्ध-सी वह आने लगी तन्मय शिल्पी के पास। प्रेतों के आह्वान की तरह बीन की झंकार उसे यहाँ खींच लायी।

मोह टूटते ही उसने अपने आपको मुसाफिर के बाहु-बन्धन में पाया। वह बन्धन किसी शिल्पी का नहीं, था एक कामान्ध पशु का।

मुसाफिर उसे अन्दर घसीट लाया, मुनिया अपने को बचा न सकी।

ज्ञानहीन मुनिया विवस्त्र पड़ी थी। मुसाफिर का दिल धड़क उठा। अगर वह किसी से कह दे, तो ? उसका कलेजा बैठने लगा।

वह बाहर आया, देखा आस-पास कोई नहीं था। नीचे हजारों फीट गहरी खाई। मुसाफिर की भौंहे कुंचित हो उठीं। थोड़ी देर के बाद उसने मुनिया को उठा लिया। ऊपर आसमान नीचे खाई, देखनेवाला कोई नहीं। मुनिया हजारों फुट नीचे विलीन हो गयी।

मुनिया की कपड़े सिसकियाँ भरने लगी।

मुसाफिर चल पड़ा तुंगनाथ की ओर, किसी को कुछ पता भी नहीं चला।

तुंगनाथ में एक दिन रहकर मुसाफिर लौट आया।

चट्टी में आकर देखा कोई जगह खाली नहीं था। वह आगे बढ़ा, फिर वहीं आ गया, जहाँ वह जाते समय ठहर गया था। इस बार भी

यहाँ वह अकेला ही था। अंधेरा कमरा न जाने कैसा डरावना-सा लगने लगा। मुनिया की स्मृति बार-बार सनसनी पैदा कर रही थी।

उसने मोमबत्ती जलायी।

आसमान बादलों से घिरा हुआ था। रात बढ़ती आ रही थी, मगर उसे नींद नहीं आयी। मोमबत्ती की रोशनी नीचे आकर बुझ गयी।

बरफ-सी ठण्डी हवा अन्दर आयी, देखा उसने खिड़की पर एक नग्न नारीमूर्ति।

'नहीं! नहीं!' चिल्ला उठा मुसाफिर।

'हा हा हा हा हा' हँसने लगी नारीमूर्ति, 'हा हा हा हा...'

एक विचित्र रोशनी उसकी ओर आ रही थी, उसे खा जाने के लिए। आह! आर्तनाद कर लुढ़क पड़ा निष्प्राण मुसाफिर।

काफी दूर आ गये।

तुंगनाथ के नीचे से जाते समय जंगली ने पूछा—'तुंगनाथ भी नहीं जाइयेगा बाबूजी?'

'नहीं।'

हमलोग जिस झुंड से मिले थे, वे लोग तुंगनाथ की खड़ी चढ़ाई के रास्ते से चलने लगे। मैं और जङ्गली अपना रास्ता पकड़े पहाड़ी दर्रे से होते हुए आगे की ओर कदम बढ़ाते बढ़ चले।

१०

करीब दस दिन बीत गये ।

केदार-बद्री से तुंगनाथ के रास्ते से होता हुआ मैं बद्रीनारायण के लिए बढ़ रहा था।

चमोली तक मोटर का रास्ता तो एक थी ही, फिर भी एक नया रास्ता निकालने के लिए पहाड़ काटा जा रहा था। वहीं मैंने दुधिया पहाड़ देखा था। पाउडर के कण रास्ते पर बिखरे हुए थे, लग रहा था दूध-सी सफेद एक चादर बिछा दी गयी है।

शाम होने से पहले ही चमोली पहुँच गये थे। दो घण्टे आराम करने के बाद चाय पीकर मैंने सोचा, कहीं से घूम आऊँ।

पुल के उस पार दूर तक चला गया है रीवर साइड रोड।

उसी रास्ते से मैं वहाँ गया, जहाँ दुधिया पहाड़ देखा था। पाँच बजे मजदूर लोग चले गये थे, अब वहाँ कोई नहीं था। कभी-कभी दो-एक यात्री या यात्रियों का एक आध झुण्ड बढ़ता जाता था चमोली की ओर।

पाउडर के ढेर के बीच बैठा मैं घरौंदा बना रहा था, लग रहा था एकाएक बचपन लौट आया हो।

बचपन की याद में उलझा था, तभी कुछ पत्थरों की आड़ से किसी की कराह सुनाई पड़ी। जाकर देखा, शंकर शायद शराब पीकर पड़ा था।

'शंकर !' मैं उसके बगल में बैठ गया।

'तू ?' वह चकित हुआ। फिर कराहते हुए उसने कहा—'मैं चल रहा हूँ रंजू ..।'

'क्या अनाप-शनाप बक रहा है, तुझे हो क्या गया है ?'

'पाप का फल भोग रहा हूँ। पण्डे ने छूरे से घायल कर दिया है।'

उसके करवट बदलते ही मैं चौंक पड़ा। देखा खून सूखकर काला पड़ गया था। वह बहकता चला, 'और ज्यादा देर मैं जिन्दा न रहूँगा। मेरे मरने के बाद यह सोने की ताबीज निकाल लेना, तेरे काम आयेगी।'

'क्या अंट-शंट बक रहा है ? सब ठीक हो जायगा, चोट मामूली-सी है।' कपड़ा फाड़कर पट्टी बाँधते हुए मैंने कहा।

दूर चमोली की बत्तियाँ टिमटिमा रही थीं, शंकर को सहारा देकर मैं धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। चट्टी पहुँच उसे कम्बल पर लेटाकर मैं निकल पड़ा डाक्टर की खोज में। पट्टी आदि बाँधकर डाक्टर बोले, 'कोई खतरे की बात नहीं, हफ्ते भर में ठीक हो जायगा।

रात को ज्वर आया, शंकर बकने-झकने लगा, 'हाय भगवान् ! कला पर न जाने क्या बीतती होगी···'

शंकर के लिए कई दिन रुक जाना पड़ा। जब वह अच्छी तरहसे चलने-फिरने लगा तो उसने कहा—'अब मुझे छोड़ दे शैतान, तेरे साथ रहकर ऊब चला हूँ।'

मैंने वजनी गालियाँ देकर उसे चुप करा दिया।

एक दिन उसने सारी घटना सुनाई—'समझे यार, इधर तो मैं कला पर फिदा हो चुका था, मगर मैं ही अकेला नहीं, और एक नौजवान भी उसपर जान देने वाला था। जिस रात को धर्मशाला में तुमसे मिलने गया था, उसी रात उल्लू के पट्ठे ने मुझे कला से बात करते देख लिया। उसने मुझे धमकाया, मगर मैं भला उस जनखे से क्या डरता ?'

फिर क्या हुआ खुदा जाने, वह बदमाश दिखाई नहीं पड़ा। मौका पाकर हम दोनों उड़न छू हुए। कई दिनों के बाद एक दिन जब आगे चलने के लिये चट्टी से दोनों निकले, तो देखा सामने खड़ा है पण्डे का बच्चा ! उसकी आँखों से आग निकल रही थी। फिर कहना क्या था, फौरन छुरा निकाल कर भोंक दिया।

अब मुझे हँसी आती है, अगर मारना ही था तो ऐसा मारता जिससे मैं दूसरों की बीबी से प्यार करने का परिणाम भोगता। असल में उसका कोई दोष नहीं। बात यह है कि परिस्थिति ने उसे छुरा भोंकने को मजबूर किया था; फिर था भी अनाड़ी। अगर कभी भेंट हो तो अच्छी तरह उसे छुरा भोंकना सीखा दूँगा।' कहकर शंकर जोर से हँसने लगा।

रात काफी हो चुकी थी, मैंने कहा—'अबे, बहुत हुआ, अब सो जा। कल आगे चलना है, याद है न ?'

उसने कुछ कहा नहीं, सिर तक कम्बल ओढ़ लिया।

नहानेवालों की चहल-पहल से नींद टूटी। शंकर को जगाने जाकर देखा वहाँ कोई नहीं था। तकिये के नीचे एक टुकड़ा कागज पड़ा था। उसे उठा कर मैं पढ़ने लगा—

'प्रिय रञ्जन, इस आवारे को तेरा स्नेह का बन्धन कस रहा है। तू जाने नहीं देगा, सो भागने के सिवा कोई उपाय नहीं था। शंकर, तेरा दुश्मन।'

'जंगली !'

'जी बाबूजी !'

वह तुरन्त आ खड़ा हुआ ।

'देखो, कल तुम्हें तीन टिकटें लेने के लिये कहा था न, तीन नहीं, दो ही लेना समझे ? जल्दी करो !'

'जी बाबू जी !'

बसें कतार से चल रही थीं ।

यह बस पीपल कोठी तक जायगी । उसके बाद चना चबाओ और पैदल मरो । अगर पैर दुखे तो तेल तो सभी चट्टी में मिलता है, गरम करके अच्छी तरह से मालिश करो ।

पीपल कोठी में सब कुछ मिलता है, पर पहाड़ी मक्खियाँ सबसे प्रसिद्ध हैं । मक्खियों पर रिसर्च करने वाले पालिटिशियन डा० लोहिया अगर उनके प्रति सरकार की उदासीनता के प्रतिवाद में आन्दोलन उठाकर आदर के साथ उन्हें पालनेवाले मिठाईवालों को अगर कुछ गवर्नमेन्ट 'एड' दिला सकें तो देश का कल्याण होगा ।

मेरे बगल में एक मद्रासी सज्जन बैठे थे । उनसे परिचय हुआ । मैंने अपने बारे में एक ही दो शब्द कहा था, पर उन्होंने अपना पूरा हुलिया सुना दिया । वे बात ज्यादा करते थे इसमें शक नहीं, मगर ये बातें अरोचक नहीं थीं ।

इधर वे कई बार आ चुके थे । मगर केदार नहीं गये, केवल बद्री-विशाल दर्शन कर लौट जाते हैं ।

मुझे दिलचस्पी लेते देख उन्होंने बताया, बद्रीनारायण के पास ही एक जगह है, जिसे नीतिमारा कहते हैं । अलकनन्दा के तट पर बसे हुए

इस रमणीक स्थान पर जाते ही 'मेघदूत' के कवि की कल्पना के साथ उड़ने का जी चाहता है।

यहाँ के निवासियों को 'माछी' कहते हैं। कुछ लोगों का कहना है माछी 'यक्ष' का ही अपभ्रंश है और कुबेर के पुजारियों की यह जाति है कवि-कल्पना के मानस-पुत्र विरही यक्ष के उत्तराधिकारी। सिर्फ यही नहीं, यहाँ के नारियों में हैं यक्षप्रिया का सौन्दर्य!

'तुम विश्वास नहीं करोगे, नीतिमारा को देखते-देखते सचमुच मैं 'मेघदूत' में लीन हो जाता हूँ। हर पुरुष को विरही यक्ष समझने लगता और हर स्त्री में खोजा करता हूँ विरह विदग्धा यक्षप्रिया को।'

मैंने विस्मित होकर देखा उनकी ओर। एक अधेड़ नीरस व्यापारी के दिल में भी इतनी व्यथा है, विरही के लिए! सच कवि! तुम्हारी कविता सार्थक है!

बस जब पीपल कोठी पर रुकी, तो ऐसा लगा कि—अरे, इतनी जल्दी पहुँच गये! कहीं मैं प्लेन से तो नहीं आया? पहाड़ी रास्ते से एक मील बस से चलने में तो नानी याद आने लगती है। मगर मुझे ऐसा लग रहा था कि दस मील बस से नहीं, दस कदम चलकर आये थे।

पीपल कोठी के बजार से खाना खा लेने के बाद एक स्टेशनरी दूकान पर कुछ जरूरी सामान ले रहा था। तभी पीछे से किसी ने मेरे कन्धे पर हाथ रखा—'हैलो डीयर!'

'अरे तुम!' मुड़ते ही देखा, सामने खड़ा है मोटा विनय।

'नहीं तो कोई भूत समझे थे क्या?'

'अरे नहीं, तुम्हें भला सूक्ष्मदेही कौन समझेगा ? मुझपर गुस्सा क्यों होते हो प्यारे ? तो क्या एकाएक केदार से चले आनेपर तुम लोग कुछ बुरा मान गये ?'

'बुरा !' वह जोर से हँस पड़ा, नहीं यार, किसी ने बुरा नहीं माना। सुशीला आदि ने भी नहीं···'

'सुशीला ! मगर उन लोगों की बात तुमने कैसे जाना ?'

'वह बात ऐसा है कि तुम्हारी जगह अगर दूसरा कोई होता तो मैं उसे नहीं कहता। मगर तुमसे मैं छिपाऊँगा नहीं····। तुम लोगों ने जिस दिन केदार छोड़ा। उसके दूसरे ही दिन मैंने सुबीर आदि से एक बहाना बनाकर केदार छोड़ने को मजबूर किया।'

'क्यों ?'

'मेरी बात सुनने के बाद तुम्हें खुद ही पता चल जायगा। अच्छा हाँ, जल्दी जल्दी चलने के कारण चन्द्रापुरी के पास ही सुशीला और उसके साथियों से भेंट हो गई।'

'अच्छा ?' मैंने उत्सुकता प्रकट की।

'हाँ' विनय ने मेरा हाथ अपने हाथों में लिया, फिर कहा—'रंजन, मैं तुम्हारा कितना ऋणी हूँ क्या बताऊँ। तुमने मुझे नई जिन्दगी दी है।'

'मैंने ?·· वह कैसे !'

'तुम्हारे ही कारण मैं सुशीला से परिचित हो पाया, उससे घनिष्ठता हुई। वह मुझसे तुम्हारी बातें आकर पूछा करती थी। फिर आजकल वह तो...समझे कुछ ?' उसने शरमाते हुए पूछा।

'समझा !' मैंने अपना हाथ खींच लिया। फिर मन ही मन कहा—अगर न समझता तो शायद अच्छा था।

'वे लोग कहाँ हैं ?'

'सुशीला की तबियत कुछ खराब होने के कारण उन्हें रुद्रप्रयाग में रुकना पड़ा है। जानते हो मैं हरिद्वार में सुशीला के लिए प्रतीक्षा करूंगा। भेंट नहीं भी हुई तो क्या, पता मैंने ले रखा है। मैं जाऊँगा, उससे जरूर मिलूँगा...'

विनय अपनी धुन में न जाने क्या-क्या बक गया, मैं तो शायद ही कुछ सुन पाया। फिर जब उसके बस का हार्न बजा तो वह बिदा लेकर चला गया। मगर सुधीर आदि से मिलने की बात तक मेरे मन में न आयी।

विनय और सुशीला के बारे में सोच रहा था। तो विनय क्या सचमुच सफर के साथी को जीवन-संगिनी बनाना चाहता है ? कौन····जाने ?

मुसाफिरखाने में मुसाफिर ठहरते हैं। खिड़की की बगल में चम्पा का पेड़ उसे आकर्षित कर सकता है। मगर जाते समय उसे उठाकर साथ ले जाते नहीं सुना।

एक कदम आगे, तो दो कदम पीछे करते हुए गुलाब कोठी पहुँचे।

यहाँ न गुलाब देखा, न कोई खास कोठी ही दीख पड़ी, फिर भी यारों ने नाम दे रखा है, गुलाब कोठी।

शाम के समय पबलिक हेल्थ आफिस में बैठा था।

डाक्टर से अभी-अभी परिचय हुआ था। बात-बात में निकल पड़ा कि वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेद कालेज के छात्र थे। बस कहना क्या—जम गये।

डाक्टर ने कहा—'साली नौकरी क्या है, नाकों दम कर रखा है। आज यहाँ तो कल वहाँ। आज हरिद्वार तो कल पाण्डुकेश्वर, तो फिर कभी

लक्ष्मण झूला, जहाँ जी चाहे नचा रहा है। बस टिका हूँ केवल लौंडियों के कारण। लौंडियों की यहाँ कमी नहीं। पर प्यारे अंगूठा चूसने से लौंडियाँ नहीं मिलतीं, उसके लिए पैसे चाहिये, पैसे। रूप देख किसी पर लौंडियां नहीं मरतीं, मरती हैं रुपया देख। जैसे पैसे में नया पुराना नहीं देखा जाता, वैसे ही पैसेवाले में भी रूप कोई नहीं खोजता।

अकेला आदमी हूँ, बैठे-बैठे मक्खियाँ मारा करता हूँ। कभी-कभी हेल्थ आफिसर जाँच करने के लिए आते हैं। वे मनोनुकूल रिपोर्ट दे देते हैं।

मैं हँसने लगा।

गम्भीर होकर उन्होंने सामनेवाले लालाजी की ओर मेरी दृष्टि आकृष्ट की। मैंने देखा, लालाजी यात्रियों को बुला रहे थे, 'आओ भई आओ, यहाँ टिको, पूरी खाओ, जलेबी खाओ...अस्पताल सामने है।' 'अश्वत्थामा हत' के बाद 'इति गज' उच्चारण के साउन्ड कन्ट्रोलिंग के कारण युधिष्ठिर अपनी सत्यवादिता से स्खलित नहीं हुए। वैसे ही लालाजी सिर्फ 'बीमार पड़ो' छोड़कर बाकी सब कुछ बता दे रहे थे।

काफी देर तक गप्पें लड़ाने के बाद एकाएक याद आया कि जंगली की तबियत कुछ खराब है। मैंने डाक्टर से दवा माँगी।

'दवा माँग रहे हैं? मेरी ओर देख डाक्टर ने कहा, 'इसी से पता चलता है कि आप कुछ नहीं जानते।'

'क्या?'

'हेल्थ आफिस की गुप्त बातें।' उसने फुसफुसा कर कहा।

'यह कैसा? कोई स्त्री-सम्बन्धी बात है क्या?'

'स्त्री नहीं, अपनी जाति की बात।'

'किस जाति के हैं आप ?'

'डाक्टर ! कहानी है डाक्टरों की ।'

'तो क्या डाक्टरों की भी अलग जाति-पाँत होती है ? आप मानव जाति से उन्हें अलग क्यों कर रहे हैं ?'

'सो आप यह कहानी सुनने से पहले नहीं समझियेगा ।'

'क्या आप किसी नयी दवा के बारे में कहना चाहते हैं ?'

'नहीं, उसका उल्टा समझिये ।'

'समझा । ओल्ड वाइन इन न्यू बटल वाली बात ! यानी पुरानी दवाओं के नये प्रयोग के बारे में बतायेंगे ?'

'नहीं ।'

'तो नयी दवाओं के पुराने प्रयोग के बारे…'

'नहीं ।' उन्होंने सिर हिलाते हुए कहा—'यह भी ठीक नहीं हुआ ।'

'अब तो आगे अन्दाज लगाना मेरे बस के बाहर है, डाक्टर !' मैंने पराजय स्वीकार कर ली ।

'इसका सही जवाब कोई नहीं दे सकता, यह काम अनजानों के बस के बाहर की चीज है । डाक्टरी सीखने से पहले मैंने कभी यह सोचा भी न था कि डाक्टरों के पीछे इतना बड़ा एक 'राज' छिपा हुआ है । बिजनेस सीक्रेट है, इसीलिए किसी डाक्टर ने किसी से कहा नहीं । पर मैं आपसे से कह रहा हूँ । हाँ, मगर आप यह बात अगर सबसे कह दें तो मेडिकल एसोसियेशन मेरी डिग्री छीन अपने समाज से बाहर निकाल देगा, सो आप से…'

'प्रार्थना करने की कोई जरूरत नहीं । आप बताइये, मैं किसी से कहूँगा नहीं ।'

'ठीक ?'

'हाँ।'

'तो सुनिये, हमारे डाक्टरी में 'दवा' नाम की कोई चीज नहीं है।'

'डाक्टरी में दवा नहीं है! क्या कहते हैं आप?'

'नहीं, एक भी दवा नहीं।'

'मैं तो मान नहीं सकता। अगर वैसा ही है तो बाजार में जो इतनी रंग-विरंगी दवाएं मिलती हैं भला वह सब क्या हैं?'

'विश्वास करना कठिन है मगर सच मानिये, वह सब शुद्ध गंगाजल के सिवा कुछ नहीं है ...'

'सिर्फ पानी! तो इतने रंग की दवाएँ क्यों होती हैं?'

'यह रंग पानी का नहीं, रंग है रोगियों की मूर्खता का।'

'तो डाक्टर साहब, आपलोग सुई किस पदार्थ का लगाते हैं?'

'वही गंगाजल का।'

'अच्छा!' विस्मित होकर मैंने उनकी ओर देखा।

'हाँ' वे मुस्कराकर कहने लगे, 'मगर मजा देखिये, व्यापार में सामान खराब होने पर कारीगर दोषी ठहराया जाता है। मगर डाक्टरी में सब दोष का भागी होता है रोगी। किंग एण्ड डक्टर कैन डू नो रॉङ्ग।'

'आपने ठीक कहा है। एक आदमी को किसी हथियार से खून कीजिये, आपको फाँसी होगी। मोटर के नीचे दबकर मरिये, अधिक से अधिक आप पर फाइन भी होगा तो पचास रुपये। मगर इन्जेक्शन देकर मार डालिये किसी को, सजा तो दूर रही—ऊपर से मिलेगा पचास रुपये।'

'हाँ, डाक्टरी का मजा तो इसी में है।'

'तो बताइये, मरीज को आपलोग अच्छा कैसे करते हैं?' मैंने डाक्टर से पूछा।

'हिप्नोटाइज करके।'

'हिप्नोटाइज करके! किसे ? रोगी को ?'

'नहीं, रोगी के अभिभावकों को।'

'मगर' मैंने डाक्टर को रोकते हुए कहा—'आप शायद विश्वास नहीं करेंगे; पर मैं एक रोगी को सिर्फ डाक्टरों के प्रेसक्रिप्सन के बलपर अच्छा होते देखा है।'

'अच्छा !'

'हाँ।'

'कैसे जरा मैं भी तो सुनूं।'

'एक लड़की सख्त बीमार थी, मरने-मरने को हो गयी थी। उसके बड़े भाई ने इलाज के लिए एक एलोपैथ, एक होमियोपैथ, एक हकीम तथा एक संन्यासी को बुलाया। फिर उनसे कहा कि आपलोग मिलकर दवा कीजिये।

उनमें से एक ने कहा, मैं सुई लगाऊँगा। तो दूसरे ने कहा, नाक्सवमिका मैं साथ ही ले आया हूँ। फिर हकीम साहब ने फरमाया कि उन्होंने शरबते-बब्बर की बोतल लाने के लिये अपने आदमी को भेज दिया है। संन्यासी ने कहा—मुझे तो अखण्ड महायज्ञ ही एकमात्र रास्ता दीख रहा है, आप होम के लिए लकड़ी और घी भिजवा दें। मगर ताज्जुब की बात यह है कि उन्हें कुछ करना नहीं पड़ा। देखते-देखते लड़की को होश हो आया, फिर अच्छी हो गयी।

'तो क्या आप सोचते हैं कि वह डाक्टरों के कारण अच्छी हुई ?' डाक्टर ने जिज्ञासु दृष्टि से मेरी ओर देखा।

'नहीं वैसा तो नहीं लगता।'

'नहीं लगता क्या, सचमुच वैसी बात नहीं थी।'

'तो क्या बात थी ?'

'वह लड़की उन चारों महात्माओं की बातचीत सुनकर ही अच्छी हो गयी।'

'वह कैसे ?'

'बताता हूँ !' ठीकसे बैठते हुए डाक्टरने सिगरेटका पैकेट निकाला। मैंने एक सिगरेट उठा लिया। सिगरेट की दो कश खींचने के बाद उन्होंने कहा—'असल में लड़की को उस समय शायद थोड़ा-बहुत ज्ञान था। सो डाक्टरों की बातें जब उसके कान तक पहुँची तब आत्म-रक्षा के स्वाभाविक इच्छा के बल अपनी सारी शक्ति इकट्ठा कर वह फौरन उठ बैठी। क्योंकि वह समझ गयी थी कि ये चार डाक्टर अगर अपना को-आपरेटिव दवाई शुरू करें तो रोग के साथ ही साथ उसे भी इस देह की माया छोड़नी पड़ेगी। सो वह उठ बैठी।'

'बात ठीक मालूम पड़ती है। मगर डाक्टर साहब यह बात आप कैसे जान पाये ?'

'बात यह है कि डाक्टरी करते-करते कुछ दिन हो गये हैं, न ? सो डाक्टरों के साथ रहते-रहते अनेक रहस्यों का पता चल गया। इसीलिए इस 'केस' के बारे में सुनते ही असली बात का पता लगाने में देर न लगी। और हाँ, भूलिये नहीं मैंने आपसे अभी जो कहा, यह सभी बातें किसी से कहियेगा नहीं। नहीं तो केवल मैं अकेले नहीं, थोड़े ही दिन में शादी करने वाला हूँ, एकदम बीबी-बच्चे सहित मारा जाऊँगा।'

रास्ते में एक दिन और बिताया एक कस्बे में।

वहाँ, आधीरात को मैं नदी किनारे बैठा था। चारों ओर निस्तब्धता व्याप्त थी। नदी के उस पार एक छोटी सी झोपड़ी में एक लालटेन टिमटिमा रहा था। क्रमशः गहन हो रही निर्जनता से अनायास ही भय की लहर लहरा उठती थी।

रात दो बजे के करीब मैंने उठकर लौटने के लिये कदम बढ़ाये। कस्बे

की ओर जाते ही एकाएक मेरी नजर पत्थर के नीचे पड़ी। देखा कंकाल-सा एक सन्यासी बैठकर चिलम का दम लगा रहा है।

उसने इशारे से मुझे अपने पास बुलाया। उसके बुलाने में न जाने क्या जादू था कि मैं उसकी उपेक्षा न कर सका। कदम आगे बढ़े। वह कैसा अजीब-सा आदमी था कि विस्मित होकर मैं उसे देखता ही रह गया। मेरे मन में अनेक प्रश्न आ खड़े हुए! कौन हैं? मुझसे क्या चाहता है?

'तुम इतनी देर तक वहाँ बैठे थे न?' उसने मुझसे पूछा!

'जी हाँ, क्यों?'

'तो तुम कुछ खोज रहे थे, क्यों, वह मिला?'

'खोज रहे थे···क्या खोज रहा था?'

'क्या खोज रहे थे वह तुम अच्छी तरह से जानते हो। तो कहो मिला?'

'क्या मिला?' मैं झुंझला उठा।

'वही जो तुम मुझसे छिपा रहे हो। हाँ ऐसा ही होता है···कीमती अगर कुछ मिल गयी तो सबको लुट जाने का डर लगता है—ठीक तुम्हारी ही तरह! तुम्हें मिल गया कोई बात नहीं, मुझे भी मिलेगा···चौदह वर्षों से खोज रहा हूँ, चौदह वर्षों से···'

मैं उसकी ओर देखने लगा, यह नशा चिलम का है या उससे भी जोरदार किसी चीज का, यह मुझे आज तक पता नहीं चला।

तीसरे दिन दोपहर तक बद्रीनारायण पहुँच गया।

राह की परेशानियों के कारण थक चुका था, सो तप्तकुण्ड में जाकर

अच्छी तरह से हाथ पैर धोये। गरम पानी में डुबकी लगाने के कारण थकावट दूर हो गयी। शरीर हल्का हुआ।

दूकान में जाकर कचौड़ियाँ खायीं। मन्दिर जाने की फिक्र तो थी नहीं और फिर मन्दिर बन्द भी था। बाद में दर्शन किया जायगा।

जङ्गली के लिए खाना लेकर सीधे मैं बाबा काली कमलीवाले की धर्मशाले में लौट आया। तबियत ठीक न रहने के कारण वह सोया हुआ था। मैंने उसे जगाया नहीं, खाना ढककर रख दिया और खुद भी कम्बल ओढ़ लेट गया। यहाँ काफी ठंड पड़ती है, सो चार आना दिन के हिसाब से रजाइयाँ किराये पर मिलती हैं। हमने भी कुछ मँगवा लिया।

नींद खुली तो देखा, घड़ी में पाँच बज रहा था।

जंगली की तबियत अच्छी नजर आ रही थी। खाना खिड़की पर वैसा ही रखा हुआ था, उसने छुआ तक नहीं। पूछनेपर कहा—'भूख नहीं है।'

कपड़े बदलकर जंगली को रुपये देते हुए मैंने कहा—'रखो कुछ खा लेना। मैं मन्दिर जा रहा हूँ। बाहर जाते समय चाभी आफिस में दे जाना, मैं ले लूंगा।'

'जी।' उसने सिर हिलाया।

बद्रीनारायण के मन्दिर में काफी भीड़ थी, सिनेमा के टिकट खरीदने वालों की तरह दर्शन के लिए भी धक्का-धुक्की कर रहे थे। भीड़ देख एक कोने में खड़ा हो गया।

मैं सोचने लगा।

सामन्त युग का अन्त हो चुका है, मगर पत्थर के भगवान् के लिए वह युग आगे भी जैसा था, आज भी वैसा ही है।

कैदियों को लेकर खेल खेलना उस जमाने का निष्ठुरतम मनोरंजन

का साधन था। दिन बदला, मगर मनुष्य की आदिमतम वृत्तियाँ आज भी विकल नहीं हुईं। सुविधा पाते ही सिर उठा लेती हैं।

नीरो का खून आज भी बह रहा है। मगर जलाने के लिए रोम मिलना सरल नहीं। अमित शक्तिशाली को लेकर खेलने की प्रवृत्ति में घाटा नहीं पड़ा, मगर शृंखलित सैमसन मिल नहीं रहा है।

मनुष्य अपनी आदिमतम प्रवृत्तियों को जारी रखने के लिए मन्दिर में कैद कर रखे हैं देवताओं को। अन्धकार में अंधा देवता आज भी रास्ता ढूँढ़ता फिर रहा है बाहर निकलने के लिए। मगर बगुला भगत लोग उन्हें बाहर भागने नहीं देते।

बद्रीनारायण के बारे में कहा जाता है कि अलकनन्दा या नारदकुण्ड में छिपे रहनेवाली इस मूर्ति को पहली बार देवताओं ने निकाल कर बन्द किया था मन्दिर में। देवर्षि नारद थे प्रधान अर्चक।

उसके बाद जब इधर बौद्धों का प्रभाव पड़ा तब इस मन्दिर पर उनका अधिकार हो गया। उन बौद्धों ने बद्री को बुद्ध मानकर पूजा जारी रखी। युगपुरुष शंकराचार्य जब बौद्धों को पराजित करने लगे तब इधर के बौद्ध तिब्बत की ओर भाग गये। भागते समय मूर्ति को वे अलकनन्दा में फेंक गये।

शंकराचार्य ने आकर जब मन्दिर खाली देखा, तो योगबल से उसकी स्थिति जानी और उसे अलकनन्दा से निकलवा कर मन्दिर में प्रतिष्ठित करायी।

कहानी यहीं खत्म नहीं हुई...तीसरी बार मन्दिर के पुजारी ने ही मूर्ति को तप्तकुण्ड में फेंक दिया और वहाँ से भाग गया। क्योंकि यात्री आते ही नहीं थे, बेचारे को सूखी रोटी भी मयस्सर नहीं होता था। उसी समय पाण्डुकेश्वर में किसी को घण्टाकर्ण का आवेश हुआ और

उसने बताया कि बन्दी देवता का विग्रह तप्तकुण्ड में पड़ा है। फिर कहना क्या था, रामानुज सम्प्रदाय के किसी आचार्य ने तप्तकुण्ड से मूर्ति निकलवा कर प्रतिष्ठित किया इस आधुनिक मन्दिर में। और तभी से उस मूर्ति को लेकर धर्म में शर्मनाक काला-बजारी चल रही है।

रात की जवानी ढल चुकी थी।

मैं एस्किमों की तरह लिवास लपेटे बाहर निकला।

'लक्स' की तरह पाला पड़ रहा था।

जंगली ने कहा—'दूर न जाइयेगा बाबू, चारो ओर खड्ड है।'

मैं चुपके निकल आया था।

रात के प्रति मेरा मोह है, खासकर चाँदनी रात को एक अजीब सा नशा सवार हो जाता है। मैं शहर के एक ओर से दूसरी ओर तक घूमा करता हूँ, और आज शहर के कोलाहल से दूर यहाँ भी चाँदनी के जादू ने मुझे बाहर खींच लिया।

चलते-चलते घूर कर देखा, दरवाजे पर खड़ा जंगली शायद मेरी ओर देख रहा है। झरझर बरफ पड़ रहा था। मेरे लिवास सफेद हो गये। मैं तुषार शुभ्रता में लीन हो गया।

पूनम की रात। चाँदनी की चादर बिछ गयी चोटियों से लेकर निष्कलंक शुभ्र मंदिरचूड़ा तक। बरफ से ढका हुआ पहाड़ पलितकेश ध्यानी योगी-सा लग रहा था। सारे संसार में निस्तब्धता छा गयी है। मानों वह सो गया है। केवल जागकर चुपचाप रखवाली कर रहा है गगनचुम्बी हिमालय!

११

बद्री से उतरते समय हनुमान चट्टी में भेंट हो गयी सोहनलालजी से, देखते ही उन्होंने मुझे आलिंगन में बाँध लिया।

मिसेज सक्सेना मुस्करायीं—'कहिये बदरीनारायण से क्या माँगा आपने ?'

मुस्कराकर मैंने जवाब दिया, 'एक बात आप भूल रही हैं श्रीमतीजी।'

'क्या ?'

'यही कि जितना दिन जा रहा है, मेरी उम्र भी उतनी ही बढ़ रही है, मगर आपकी घट रही है।' सब एक साथ हँस पड़े।

वे लोग दुकानपर टिके हुए थे, मुझे आगे बढ़ना था।

सुशीला मेरे लिए बाहर प्रतीक्षा कर रही थी, एकान्त पाते ही वह निकल आयी।

'रुक जाओ रंजन, एक दिन के लिए और रुक जाओ।' मेरी कमीज पकड़कर असहाय-सी चीख पड़ी पंगु सुशीला।

'मैंने तुमसे कहा न !' मैंने दृढ़ स्वर से कहा—'ऐसा नहीं हो सकता, मुझे जाना ही होगा।'

वह चुप रही।

'आखिर तुम मुझसे चाहती क्या हो ?' उसके हाथ से मैंने अपनी कमीज छुड़ा ली।

'कुछ नहीं, सिर्फ तुम एक दिन रुक जाओ।'

'ऐसा नहीं हो सकता सुशीला। जंगली सामान लेकर आगे बढ़ गया है, मुझे जाना ही होगा।'

मूर्तिवत खड़ी सुशीला को पीछे छोड़कर मैं जल्दी से आगे बढ़ आया। पीछे की ओर देखने की जरूरत नहीं हुई। लग रहा था जैसे दो सजल नैन मेरी ओर देख रहे हों।

बेचारी सुशीला। जिंदगी की सारी गलतियों में से यह भी एक भारी गलती तुमने की कि प्यार किया एक बेरहम राही से। वह भला क्या जानेगा तुम्हारी व्यथा को। शंकर ने ठीक कहा था, मैं हूँ निरा नीरस आदमी ! प्यार-मुहब्बत मैं क्या जानूँ ?

बसें सावधानी से चल रही थीं।

हमलोग काफी नीचे उतर आये।

इन कई दिनों की सारी घटनाएँ आँखों के सामने सजीव सी दीख रही थीं। पहाड़ी इलाके के सुख-दुख की स्मृति को मैं स्पष्ट अनुभव कर रहा था। सुशीला के प्रति अपना दुर्व्यवहार रह-रहकर मेरे मन में गड़ रहा था। मेरा इतना कठोर हो जाना क्या उचित था ?

जंगली चुपचाप बैठा किसी चिंता में डूबा हुआ था।

बस देवप्रयाग के पास आ रही थी···

मैं सोच रहा था, पहाड़ पर यही है आखिरी संयोग-केन्द्र। अगर यहाँ भी सुशीला के लिए प्रतीक्षा की जाय तो उससे मुलाकात हो सकती है। उसे मनाया जा सकता है। मगर इसके बाद वह खो जायगी जन समुद्र में, जहाँ लाख कोशिश के बाद भी मैं उसे खोजकर निकाल नहीं सकूंगा।

मेरे मन में तूफान मचा हुआ था।

लग रहा था जैसे असुन्दर नंगे पहाड़ों को भी प्यार करने लगा हूँ। हृदय का काफी जगह घेर लिया है उस विकलांग लड़की ने। मेरा दिल कह रहा था उसके लिए प्रतीक्षा करनी चाहिए। फिर सोच रहा था, मैं किस ओर बहा जा रहा हूँ। सुशीला का यह आकर्षण उन्माद हो सकता है, परन्तु मैं तो उन्मादी नहीं। आवेग में आकर क्या खिलवाड़ कर रहा हूँ।

मैं अभीतक कुछ तय नहीं कर पाया। बार-बार सोचने लगा देवप्रयाग में उतर कर सुशीला की प्रतीक्षा करूं या आगे बढ़ जाऊँ?

देवप्रयाग पास आ रहा है....